अंक: 3, जुलाई–दिसंबर, 2021

शोध–चिंतन पत्रिका

सहयोगी विद्वानों द्वारा पुनरीक्षित ई शोध पत्रिका

संपादक
डॉ. रीतामणि वैश्य

http://shodhchintanpatrika.neglimpse.com/

शोध-चिंतन पत्रिका

सहयोगी विद्वानों द्वारा पुनरीक्षित ई शोध पत्रिका

संपादक

डॉ. रीतामणि वैश्य

E-ISSN: 2583-1860

अंक: 3; जुलाई-दिसंबर, 2021

प्रकाशक: NEGLIMPSE

E-ISSN: 2583-1860

संपर्क-सूत्र:

ई-मेइल: neglimpse@gmail.com
shodhchintan@gmail.com

मोबाइल नं. 7002272818

संरक्षक

डॉ. किरण हाजरिका
सदस्य, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग

डॉ. अमूल्य वर्मण
पूर्व-विभागाध्यक्ष तथा सहयोगी प्राध्यापक
हिंदी विभाग, कॉटन कॉलेज

परामर्श मंडल

प्रो. एइच सुबदनी देवी
हिंदी विभाग, मणिपुर विश्वविद्यालय

प्रो. दिनेश कुमार चौबे
हिंदी विभाग, पूर्वोत्तर पहाड़ीय विश्वविद्यालय

प्रो. मोहन
हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. नारायण चंद्र तालुकदार
पूर्व-विभागाध्यक्ष तथा सहयोगी प्राध्यापक
हिंदी विभाग, कॉटन महाविद्यालय

डॉ. अच्युत शर्मा
भूतपूर्व सहयोगी प्राध्यापक
हिंदी विभाग, गौहाटी विश्वविद्यालय

प्रो. रवीन्द्रनाथ मिश्र
हिन्दी विभाग, विश्व भारती विश्वविद्यालय

डॉ. पवन कुमार
सहायक प्राध्यापक
हिंदी विभाग, गवर्मेंट डिग्री कॉलेज ऑफ भैंसा

डॉ. माक्सीम देमचेन्को
सहयोगी अध्यापक, मॉस्को स्टेट लिंग्विस्टिक
विश्वविद्यालय, मॉस्को (रूस)

प्रो. निरंजन कुमार
हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. राहुल मिश्र
प्राध्यापक, हिंदी
केंद्रीय बौद्ध विद्या संस्थान (मानद विश्वविद्यालय)

डॉ. गोलोक चंद्र डेका
सहायक अध्यापक
हिंदी विभाग, गौहाटी विश्वविद्यालय

डॉ. लेखा एम.
सहायक प्राध्यापक
हिंदी विभाग, एन एस एस हिंदू महाविद्यालय

संपादक

डॉ. रीतामणि वैश्य

सहयोगी अध्यापक, हिंदी विभाग, गौहाटी विश्वविद्यालय, गुवाहाटी, असम

rita1@gauhati.ac.in

9101452787, 9435116133

Profile Link: https://www.gauhati.ac.in/academic/arts/hindi

संपादक मंडल

प्रो. जय कौशल

अध्यापक एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग

असम विश्वविद्यालय (दीफू परिसर), असम

jai.kaushal@aus.ac.in

9612091397

डॉ. मिलन रानी जमातिया

सहयोगी अध्यापक, हिंदी विभाग

त्रिपुरा विश्वविद्यालय, सूर्यमणि नगर, अगरतला,

त्रिपुरा वेस्ट, 799022

milanrani08@tripurauniv.ac.in

8974009245

डॉ. चुकी भूटिया

सहायक अध्यापक, हिंदी विभाग, काज़ीरोड,

सिक्किम विश्वविद्यालय, गंगटोक, सिक्किम, 737102

cbhutia01@cus.ac.in

9064224852

प्रो. पूनम कुमारी

हिंदी/भारतीय भाषा केंद्र, जे. एन. यू.

punamkumari@mail.jnu.ac.in

डॉ. प्रीति बैश्य

सहायक अध्यापक, हिंदी विभाग

प्रागज्योतिष महाविद्यालय, गुवाहाटी, 781009

pritibaishya@pragjyotishcollege.ac.in

9678885119

डॉ॰ फिल्मेका मारबानियांग

सहायक अध्यापक

हिंदी विभाग, सेंट एनथोनीज़ कॉलेज

शिलांग, मेघालय

fmarbaniang12@anthonys.ac.in

9436302106

डॉ॰ जोरम आनिया ताना

सहयोगी अध्यापक

हिंदी विभाग, देरानातुंग गवर्मेंट कॉलेज

इटानगर, अरुणाचल प्रदेश

aniya@dngc.ac.in

7005147047

संपादकीय

विश्व की विविध घटना-परिघटना के व्यूह से गुजरकर हम 2021 की दहलीज पर खड़े होकर 2022 के स्वागत के लिए तैयार हो गये हैं। 2021 हमसे बहुत कुछ ले गया, बहुत कुछ दे गया, कुल मिलकर कहे तो बहुत कुछ सीखा गया। देने के सिलसिले में यह वर्ष साहित्यिक सृजन भी करता गया। मनुष्य की सृजन क्षमता उस बीज की तरह होती है, जो अंकुरित होने के लिए अवसर की तलाश करता रहता है। तमाम चुनौतियों के बावजूद मौत को जीतते हुए संसार आगे बढ़ रहा है। संसार की इसी क्रम को आगे बढ़ाते हुए अनेक साहित्यिक कर्म भी हो रहे हैं, जिनमें से 'शोध-चिंतन पत्रिका' के तीसरे अंक का प्रकाशन भी एक कर्म है।

प्रस्तुत अंक में सुभाचषनी रत्नायक का 'नागार्जुन तथा गुणदास अमरसेकर के उपन्यासों में प्रगतिशील चेतना : एक तुलनात्मक अध्ययन', प्रो. यशवंत सिंह का 'हिन्दी साहित्य में पूवोत्तर भारत(विशेष संदभु : मणिपुर)', शरिफुज जामान का 'आधा गाँव' उपन्यास में चिचित सांप्रदायिकता की समस्या', पूजा शर्मा का 'महापुरुष श्रीमन्त शंकरदेव के बरगीतों में श्रीकृष्ण' , डॉ. रीतामणि वैश्य का 'छायावादी काव्य में नारी का स्थान', संजीव मंडल का ''मरूद्यान' उपन्यास का संवेदना पक्ष: एक समीक्षात्मक अध्ययन', रुबी मणि दास का 'समीर ताँती की कविताओं में चित्रित आर्थिक चेतना', नीतामणि बरदलै का 'सुशीला टाकभौरे की कविताओं में स्त्री-मुक्ति का स्वर: एक विश्लेषणात्मक अनुशीलन' – ये आठ शोध आलेख हैं। आनेवाले नये वर्ष की शुभ कामनाओं के साथ यह अंक पाठकों के सामने प्रस्तुत करती हूँ।

सादर

डॉ. रीतामणि वैश्य
संपादक
शोध-चिंतन पत्रिका
अंक : 3; जुलाई-दिसंबर, 2021

इस अंक में...

	आलेख	नाम	पृष्ठ संख्या
1	नागार्जुन तथा गुणदास अमरसेकर के उपन्यासों में प्रगतिशील चेतना: एक तुलनात्मक अध्ययन	सुभाषिनी रत्नायक	01-11
2	हिंदी साहित्य में पूर्वोत्तर भारत(विशेष संदर्भ : मणिपुर)	प्रो. यशवंत सिंह	12-22
3	'आधा गाँव' उपन्यास में चित्रित सांप्रदायिकता की समस्या	शरिफुज जामान	23-35
4	महापुरुष श्रीमन्त शंकरदेव के बरगीतों में श्रीकृष्ण	पूजा शर्मा	36-48
5	छायावादी काव्य में नारी का स्थान	डॉ. रीतामणि वैश्य	49-67
6	'मरूद्यान' उपन्यास का संवेदना पक्ष: एक समीक्षात्मक अध्ययन	संजीव मंडल	68-77
7	समीर ताँती की कविताओं में चित्रित आर्थिक चेतना	रुबीमणि दास	78-86
8	सुशीला टाकभौरे की कविताओं में स्त्री-मुक्ति का स्वर: एक विश्लेषणात्मक अनुशीलन	नीतामणि बरदलै	87-95
9	चंद्रकांता की कहानियों में कश्मीरी जीवन का यथार्थ	संगीता	96-102

शोध-चिंतन पत्रिका: सहयोगी विद्वानों द्वारा पुनरीक्षित ई शोध पत्रिका
अंक:3; जुलाई-दिसंबर, 2021; पृष्ठ संख्या : 01-11

नागार्जुन तथा गुणदास अमरसेकर के उपन्यासों में प्रगतिशील चेतना : एक तुलनात्मक अध्ययन

✍ **सुभाषिनी रत्नायक**

शोध-सार:

नागार्जुन और अमरसेकर क्रमः हिंदी और सिंहली के मूर्धण्य उपन्यासकार हैं। ब्राह्मण होते हुए भी नागार्जुन ने पारंपरिक रीति-रिवाजों की उपेक्षा कर अपने चिंतन से जीवन को आगे बढ़ाया। नागार्जुन जनमुखी साहित्यकार हैं, समाजोन्मुखी साहित्यकार हैं। इसी तरह गुणदास अमरसेकर भी सिंहली साहित्य के सशक्त कथाकार हैं। आपेन पुराणे संस्कारों से बंधे समाज को मुक्त करने का प्रयास किया।

बीज शब्द: *नागार्जुन, गुणदास अमरसेकर, उपन्यास, प्रगतिशील चेतना।*

प्रस्तावना:

कोई भी साहित्यकार किसी एक देश अथवा एक जाति का व्यक्ति नहीं होता। वह अपनी भौतिक परिस्थितियों की उपज के रूप में तत्कालीन समाज की ऐतिहासिक शक्तियों का प्रतिनिधित्व करता है। एशिया महाद्वीप के दो देश भारत और श्रीलंका के हिन्दी तथा सिंहली साहित्य के आधुनिक युग के दो महान कृतिकार, नागार्जुन तथा गुणदास अमरसेकर के उपन्यासों में निहित प्रगतिशील चेतना की तुलनात्मक पड़ताल मेरे शोध-कार्य का विवेच्य विषय है।

हिन्दी तथा सिंहली के इन दोनों साहित्यकारों के उपन्यास साहित्य की आंतरिक विशेषताओं का उद्घाटन करना तथा नागार्जुन से अमरसेकर को जोड़ना कई दृष्टियों से अतीव महत्वपूर्ण है। क्योंकि इन दोनों साहित्यकारों का जन्म दो देशों में हुआ है। दोनों के युग की परिघटनाओं तथा दोनों साहित्य के उद्भव और विकास में समानताएँ भी दिखायी देती हैं और भिन्नताएँ भी।

हिन्दी और मैथिली के प्रतिस्थित रचनाकार नागार्जुन को पूरा हिन्दी जगत कई नामों से जानता और मानता है।(राय

2006:01) 'ठक्कन', 'वैद्यनाथ मिश्र', 'यात्री', 'वैदेह', 'बाबा', 'नूतन कबीर', 'नागार्जुन' आदि नामों से एक ऐसे साहित्यकार को जाना जाता है जो जीवन और साहित्य में बेहद बेलिहाज़ तथा निडर व्यक्तित्ववाले सर्जक रहे हैं। अपने जीवन और अनुभूति के संग नागार्जुन का 'बहुभाषी रचनाकार' व्यक्तित्व अपनी अलग पहचान बन गया था। प्रारंभ से ही क्रांति, समता, प्रगति और जनवाद ये चारों शब्द अपने अर्थ और व्यवहार के साथ नागार्जुन के भीतर स्थायी भाव से आसन लगाये बैठे थे। पुश्त-पुश्त की दरिद्रता तथा राजनीति की वामपक्षीय प्रवृत्ति ने उन्हें कोटिशीर्ष, कोटिबाहु एवं कोटिचरण का रचनाकार बना दिया है।

सिंहली साहित्य को उसके पुराने संस्कारों से मुक्त कर उसे सहज विकास की दिशा देने वाले महत्वपूर्ण साहित्यकारों में से गुणदास अमरसेकर की अद्वितीय भूमिका है। सामाजिक चेतना, वैचारिक प्रतिबद्धता और अभिव्यक्ति कौशल की दृष्टि से आधुनिक सिंहली साहित्य के इतिहास में अमरसेकर को अलग से रेखांकित किया जा सकता है। वैचारिक अंतर विरोधों के बावजूद भी वे जनवादी साहित्यकार हैं। उपन्यासकार, कवि, कहानीकार तथा आलोचक के रूप में सिंहली साहित्य में गुणदास अमरसेकर की प्रतिष्ठा रही है। अभी तक जीवित गुणदास अमरसेकर एक ऐसे साहित्यकार हैं जो आधुनिक श्रीलंका के इतिहास में समाज तथा राजनीति को अपने विचारों से सबसे अधिक प्रभावित कर रहे हैं। उनका महत्व उपन्यासों के कथानक को सामाजिक मोड़ देने तक सीमित नहीं है, वरन् एक सशक्त गद्य-शैली के निर्माण में भी उनकी महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

विश्लेषण:

हिन्दी साहित्य में उसके आदिकाल से ही प्रगतिशील तत्त्व मिलते हैं। हिन्दी साहित्य में वैदिक साहित्य के विरुद्ध प्राचीन भौतिकवादी विचारधारा एवं दर्शन मौजूद थे। मध्यकाल में कबीर प्रगतिशीलता के अगुआ रहे हैं। उसी प्रकार पुरातन सिंहली साहित्य, जो बौद्ध धर्म के आश्रय में विकासित हुआ है, उसमें भी प्रगतिशील तत्त्व मिलते हैं। किंतु आधुनिक युग के संदर्भ में साहित्य में जिस विचारधारा ने प्रगतिशील नाम से जो विशिष्ट अर्थ प्राप्त किया है, उसका विश्लेषण करना हमारा उद्देश्य है। भारत की स्वतंत्रता के बाद इस पूरे काल में भारतीय समाज का मुख्य अंतर्विरोध शोषक तथा शोषितों, पूँजीपति तथा सर्वहारा, सामंतशाही तथा

किसानों के बीच रहा था। नागार्जुन ने प्रेमचंद के युग से चली आ रही सामाजिक उपन्यासों की परंपरा को बड़ी शिद्दत से अपनाया तथा स्वतंत्र भारतीय समाज में आये परिवर्तनों को अपने उपन्यासों में रेखांकित किया। भारतीय कृषकों की पीड़ा प्रेमचंद ने भी उभारी है। किंतु नागार्जुन ने उन कृषकों की हताशा तथा अंदर-अंदर सुलगती आग को एक विद्रोही स्वर में परिवर्तित किया है तथा गाँव में बसने वाले मूल जनों को वाणी दी है। अत: इस संदर्भ में प्रो. प्रणय कुमार के मत का उल्लेख करना उचित ही प्रतीत होता है- प्रेमचंद की संवेदना नागार्जुन की रचनाओं में प्रगतिशील चेतना में प्रेरित हो गई है।(राय 2011:37)

नागार्जुन के उपन्यास 'बलचनमा' का कथानक बिहार के ज़िला दरभंगा के ग्रामीण जीवन पर आधारित है। इस उपन्यास का मुख्य नायक बलचनमा है। इसमें तटस्थ दृष्टि से ग्रामीण जीवन की ओर देखने का प्रयास किया गया है तथा उच्च वर्ग के द्वारा निम्न वर्ग के साथ होनेवाला व्यवहार इसमें दिखाया गया है। नागार्जुन की साम्यवादी विचारधारा की स्पष्ट छाप इस उपन्यास में दृष्टिगोचर होती है। बलचनमा एक गरीब खेतिहर का पुत्र है, जो सात कट्ठे ज़मीन के स्वामी के रूप में हमारे सामने आता है। इस निम्नवर्गीय किसान-पुत्र के यातनापूर्ण जीवन का प्रारंभ बाप की मृत्यु के बाद होता है। बलचनमा के मालिक गरीब का शोषण करने के लिए सदा उद्यत रहता है। बलचनमा के मालिक से जिस प्रकार उसकी ज़मीन नहीं बच सकती है, उस प्रकार उसकी माँ-बहन की इज़्ज़त भी नहीं बच सकती। अर्थ-व्यवस्था के असंतुलित धरातल पर खड़े सामाजिक ढाँचे की कुरूपता नागार्जुन की रचना में उजागर होती है। ज़मीनदार, किसानों तथा मज़दूरों का किस प्रकार शोषण करते हैं, उसकी एक सच्ची तस्वीर इसमें मिलती है। ज़मीनदारी-शोषण की पहली तस्वीर जो बलचनमा के मानस-पटल पर पड़ती है वह इस प्रकार है-

> मालिक के दरवाज़े पर मेरे बाप को एक खम्भे के सहारे कसकर बाँध दिया गया है। जाँघ, पीठ, और बाँह----सभी पर बाँस की हरी कैली के निशान उभर आये हैं। चोट से कहीं-कहीं खाल उखड़ गयी है और आँखों से बहती आँसुओं की धारा गाल और छाती पर सूखती नीचे चली गयी है...चेहरा काला पड़ गया है। होंठ सूख रहे हैं।
>
> (नागार्जुन 1987:03)

इस प्रकार पाठक की संवेदना उभरकर बलचनमा की पीड़ा से तादात्म्य स्थापित करती है।

नागार्जुन मार्क्सवादी विचारधारा के लेखक हैं। उनके लगभग सभी उपन्यासों में मार्क्सवादी अवधारणा और कला का गत्यात्मक संबंध स्थापित हो गया है। साम्यवादी विचारधारा से संबंध होने के कारण नागार्जुन वर्ग-संघर्ष में आस्था रखते हैं तथा सर्वहारा वर्ग ही नागार्जुन का आराध्य हो जाता है। उनके उपन्यासों में निरूपित सबसे बड़ी प्रगतिशीलता वही है। स्वयं उनकी मान्यता के अनुसार-

> अस्सी प्रतिशत जनता (किसान और मज़दूर) हमारे इष्ट देवता है, जो जीवन के आसपास फैली हुई है। मैं भी उन्हीं के साथ जुड़ा हुआ हूँ। मैं समाज के घटना-प्रभाव से भिन्न नहीं हूँ। पात्रों के साथ मुस्कुराता हूँ, उनसे बात करता हूँ। मैं ऐसे वर्ग का प्रतिनिधित्व कभी नहीं करता जिसमें मैं नहीं हूँ।
>
> (राय 2011:151)

नागार्जुन के इस कथन को ध्यान में रखकर हम नागार्जुन की विचारधारा को व्यापक अर्थ में प्रगतिशील और समाजोन्मुखी कह सकते हैं। वही विचारधारा उनके उपन्यास साहित्य को प्रगतिशील चेतना से जोड़ती है।

नागार्जुन क्रांतिकारी थे। उन्होंने शोषित-पीड़ित को शोषकों के विरोध में क्रांति की प्रेरणा दी। वे समानता पर आधारित समाज का निर्माण करना चाहते थे। उनका प्रगतिशील जनवादी स्वर युगीन सामाजिक विषमताओं तथा विकृतियों के प्रति न केवल ललकार भरता है, वरन जीवन का प्रत्येक बदलाव भी चाहता है। इस संदर्भ में ललित अरोरा का कथन उल्लेखनीय है। उनके शब्दों में-

> नागार्जुन ने समाज में व्याप्त कुरीतियों, विकृतियों और असंगतियों को यथार्थ की दृष्टि से देखा, समझा और अभिव्यक्त किया। संपूर्ण भारत के दुख, दर्द, पीड़ा, छटपटाहट, संकुचन का ग्रामीण तथा नगरीय जीवन की विद्रूपताएँ तथा निम्न मध्यवर्गीय जनता के अभाव के सभी रूप उनकी कलम रेखांकित करती है।
>
> (अरोरा 1986:103)

इस अवतरण से यह स्पष्ट है कि नागार्जुन आधुनिक हिन्दी साहित्य के सबसे बड़े विद्रोही तथा प्रगतिशील साहित्यकार अपने-आप में साबित हो जाते हैं। यद्यपि

नागार्जुन प्रेमचंद की यथार्थवादी परंपरा के लेखक हैं और उनका बलचनमा 'गोदान' के होरी का स्मरण दिलाता है, किन्तु प्रेमचंद में व्यापक सहानुभूति थी, वह नागार्जुन में दिखाई नहीं देती। तथापि उनके बलचनमा में नागार्जुन की गहरी मार्क्सवादी दृष्टियाँ देखने को मिलती हैं। नागार्जुन ने बलचनमा को निडर तथा स्वाभिमानी बनाया ताकि वह अपने न्याय के लिए अंतिम साँस तक लड़ता रहेगा। अर्थात् नागार्जुन के पात्र किसीके सामने झुकता नहीं। बलचनमा कहता है-

> ...कैद काट लूँगा, फाँसी चढ़ूँगा। गाँव से उजड़ जाऊँगा। मगर, शैतान के आगे कभी सिर नहीं झुका लूँगा। हाँ मैं गरीब हूँ। माँ और बहन को ज़हर दूँगा, लेकिन उनको तेरी रखैल बनाने का तेरा सपना पूरा नहीं होने दूँगा।(नागार्जुन 1987:74)

अन्याय के खिलाफ़ इतनी निर्भीकता से लड़नेवाला शोषित-वर्ग का पात्र हिन्दी उपन्यास साहित्य में बार-बार नहीं मिलता। ऐसे पात्रों का निर्माण नागार्जुन जैसे प्रगतिशील चेतना से संपन्न रचनाकार ही कर सकते हैं। यही कारण है कि न केवल 'बलचनमा' में बल्कि नागार्जुन के समस्त उपन्यासों में सामाजिक विषमता से जूझते हुए शोषितों का संघर्ष उभर कर प्रखरता के साथ प्रकट हुआ है।

साहित्य में सामाजिक यथार्थ प्रगतिशील साहित्य की महत्वपूर्ण देन है। नागार्जुन प्रगातिशील चेतना से जुड़े साहित्यकार हैं, अतः शोषित समाज की हर प्रकार की पीड़ा उनकी औपन्यासिक कृतियों में पूरे आवेग के साथ उभरकर आयी है। 1953 ई. में प्रकाशित नागार्जुन का 'नयी पौध' उपन्यास एक सामाजिक उपन्यास है, जिसके माध्यम से अनमेल विवाह की समस्या तथा उसके समाधान का मार्मिक वर्णन किया गया है। नागार्जुन अपने इस उपन्यास में अनमेल विवाह की समस्या को उजागर कर चुप नहीं हो जाते हैं, उसके समाधान का रास्ता भी दिखाते हैं। 'नयी पौध' का पात्र वाचस्पति बिस्सेरी की समस्या का समाधान प्रस्तुत करते हुए अपनी प्रगतिशील विचारधारा का परिचय देता है, जो इस प्रकार है-

> ...आप लोग सामाजिक विषमता के कारण जिस मुसीबत में फँस गये थे, उसके बारे में दिगंबर से मेरी काफ़ी चर्चा हो चुकी है। हमने जो फैसला किया, वह आपको मालूम हो गया होगा। व्यक्ति का ही समाज का संकट

है और समाज का संकट समूचे देश का संकट है। (नागार्जुन 1999:58)

इस अवतरण में वाचस्पति नहीं, मार्क्सवादी नागार्जुन ही इस प्रकार बोलते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि नागार्जुन इस उपन्यास में केवल अनमेल विवाह की समस्या का वर्णन ही न करते, बल्कि अपनी प्रगतिशील दृष्टि से समाधान भी प्रस्तुत करते हैं। वह समाधान भी एक ऐसा कदम है जो क्रांतिकारी व्यक्ति ही उठा सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि समस्या के मूल कारण को मिटाने के बाद, इस समस्या को परिणाम तक ले जाने वाली प्रगतिशीलता का ज़्यादा सकारात्मक तरीका नागार्जुन ने अपने इस उपन्यास में प्रस्तुत किया है। एक सामाजिक कुप्रथा के रूप में आरंभ किया गया यह उपन्यास अपने समय के एक विशेष मुद्दे पर प्रगतिशीलता की सीढ़ी पर सीढ़ी तैयार करता हुआ सही लक्ष्य तक पहुँचता है। इससे नागार्जुन की प्रगतिशील चेतना की गहराई का पता लग सकता है। डॉ. सुषमा धवन ने 'नयी पौध की सफ़लता को स्वीकार करते हुए लिखा है-

> ...नयी पौध की विजय उगती तथा फूटती हुई नवीन सामूहिक चेतना को बाज़ी देने में सार्थक हुई है, जिसमें कि प्रगतिशील दृष्टिकोण है। (नागार्जुन 1999:279)

इस उपन्यास में नयी पौध एक प्रतीक है- नये-नये पौधों का अर्थात् नये युवकों का जो अत्यंत विप्लवी होता है। नागार्जुन नयी पीढ़ी पर विशवास करते थे, क्योंकि वही गाँव की कुरूतियों को मिटाकर एक नये स्वस्थ समाज का निर्माण कर सकती है। प्रगतिशील कथाकार होने के कारण नागार्जुन अपने प्रगतिशील साहित्य के द्वारा यह संदेश देते हैं। नागार्जुन का यथार्थ केवल यथार्थ पर ही समाप्त नहीं होता, यथार्थ के विकल्प के चिंतन पर समाप्त होता है।

जिस प्रकार नागार्जुन प्रेमचंद की जनवादी कथा-परंपरा को आत्मसात् करते हुए साहित्य की क्रांतिकारी भूमिका को अच्छी तरह समझते थे, उसी प्रकार अमरसेकर सिंहली साहित्य के युग- प्रवर्तक माटिन विक्रमसिंह की सामाजिक कथा परंपरा को आत्मसात् करते हुए अपने साहित्य की यात्रा शुरू करते हैं। 'करुमक्कारयो' अमरसेकर का पहला उपन्यास है जिसकी रचना सन् 1955 में की गयी है। 'करुमक्कारयो' उपन्यास उनका एक उदाहरण है। इस उपन्यास की भूमिका में उपन्यासकार स्वयं उस संबंध में अपना विचार प्रकट करते हैं। अमरसेकर के शब्दों में-

> स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व विक्रमसिंह ने ग्राम-जीवन को पृष्ठभूमि बनाकर विशाल तथा मूल्यवान साहित्य की रचना की थी, किंतु बीच में वह धारा खंडित हो चली थी। मेरा उपन्यास (करुमक्कारयो) उस कथा परंपरा की अंतिम कड़ी है।
>
> (अमरसेकर 1989:भूमिका)

अमरसेकर ने 'करुमक्कारयो' शीर्षक अपने उपन्यास में प्रगतिशील विचारों के साथ ग्रामीण जीवन तथा उसकी समस्याओं का वर्णन किया है। प्रगतिशील साहित्य का यह लाभ हुआ था कि ठोस सामाजिक आधार पर साहित्य लिखा जाने लगा। प्रगतिशील चेतना के परिणाम स्वरूप समाज और इतिहास के महानायकों के बदले सामान्य तथा नगण्य लोग भी साहित्य के नायक के रूप में प्रस्तुत किये जाने लगे। उस प्रकार अमरसेकर इस उपन्यास के पात्र गाँव के साधारण लोगों को बनाते हैं। उपन्यास की पृष्ठभूमि का निर्माण अमरसेकर ने अपने ग्रामीण जीवन के अनुभवों से किया है। ग्रामीण जीवन के साथ गहरे रूप से जुड़ने का संकेत उनके इस उपन्यास में मिलता है। 'करुमक्कारयो' के माध्यम से रचनाकार श्री लंका के दक्षिण इलाके के निम्न-मध्यवर्गीय परिवार की जीवन-वृत्ति तथा मानवीय संबंधों का सूक्ष्म अन्वेषण करने का प्रयास किया है।

गुणदास अमरसेकर के औपन्यासिक विकास के दूसरे चरण में 'असत्य कथावक' उपन्यास को प्रमुख स्थान मिलता है। अमरसेकर का यह उपन्यास सन् 1977 में प्रकाशित हुआ। सन् 1971 वह वर्ष है जब श्रीलंका में तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व्यवस्था के खिलाफ़ युवा आन्दोलन तथा जन-आन्दोलन प्रारंभ हो जाते हैं। यह पूँजीवादी वर्ग-विषमता, लूट, शोषण, अन्याय तथा अत्याचार के विरोध में समाजवाद की स्थापना की क्रांति थी। उसके नेतृत्व की बड़ी संख्या विश्वविद्यालय के छात्रों तथा मध्यवर्गीय युवकों की थी। इस उपन्यास में समाजवादी चेतना से प्रभावित विश्वविद्यालयी छात्रों में संगठित होने की चेतना का विशेष रूप में उल्लेख किया गया है। अमरसेकर ने पेरादेनिय विश्वविद्यालय को केंद्र में बनाकर 'असत्य कथावक' के माध्यम से जिन समस्याओं को उभारा है, वे देश की तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक स्थिति की सूचक हैं।

अमरसेकर की उपन्यास-यात्रा के तीसरे चरण के उपन्यासों के प्रति आलोचकों, राजनीतिक विचारकों तथा चिंतकों ने पर्याप्त

ध्यान दिया है। यह इसलिए है, क्योंकि अमरसेकर ने खुद अपने इन उपन्यासों को लेकर विवादास्पद मंतव्य प्रकट किये हैं। उनके उपन्यासों की तीसरी अवधि अर्थात् अंतिम अवधि 'गमनक मुल' उपन्यास से प्रारंभ होती है। इस उपन्यास का प्रकाशन 1984 में हुआ है। 'गमनक मुल' दीर्घ उपन्यास-यात्रा का पहला खंड है। इस उपन्यास-माला में अमरसेकर ने 19वीं शताब्दी में उदित ग्रामीण शिक्षित मध्य-वर्ग को आधार बनाकर उसके गाँव से शहर में संक्रमण होने तथा उसके बाद उस मध्यवर्ग के जीवन में आए परिणाम का चित्र उभारा है। अपने उन उपन्यासों में गाँव से शहर में संक्रमित हुए मध्यवर्गीय पात्रों को अमरसेकर ने इस प्रकार चित्रित किया है मानो उन पात्रों की जीवन-घटनाएँ उनकी अपनी जीवन-घटनाएँ हों।

नागार्जुन तथा अमरसेकर दोनों बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार हैं। हिंदी साहित्य को नागार्जुन की रचनाओं से असीम शक्ति एवं ऊर्जा प्राप्त हुई है। वहीं गुणदास अमरसेकर के उपन्यास सिंहली समाज को नवीन उत्तेजक की सेवा करते हैं। हिंदी साहित्य के 'नूतन कबीर' के नाम से जाने जानेवाले उत्कृष्ट जनवादी कृतिकार नागार्जुन का वैचारिक धरातल सामाजिक एवं राष्ट्रीय परिस्थितियों के द्वारा निर्मित हुआ था। नागार्जुन के उपन्यासों का विश्लेषण करने पर स्पष्ट होता है कि उन्होंने अपने साहित्य में जीवन का जो विषद चित्रण किया है, उसमें प्रगतिशील जीवन-दृष्टि बराबर सक्रिय रही है। नागार्जुन के उपन्यासों में मूलतः मार्क्सवादी जीवन-दर्शन व्यक्त हुआ है। समतामूलक समाज की स्थापना में वे पूँजीवाद को बाधक मानते हैं। नागार्जुन की प्रगतिशीलता की दूसरी विशेषता यह है कि वे पूँजीवाद के खतरों के प्रति जनता को सावधान करते हैं। अमरसेकर के उपन्यास की प्रगतिशील चेतना प्रारंभिक दौर से देखने को मिलती है, किंतु उनके उपन्यास में मार्क्सवादी जीवन-दर्शन व्यक्त नहीं हुआ है। वहाँ पर अमरसेकर निराशावाद तथा आदर्शवाद से ऊपर उठकर यथार्थवाद की सीमा तक आते हैं, क्योंकि नागार्जुन की भाँति सामाजिक समस्याओं के प्रति अमरसेकर वर्ग-चेतना की दृष्टि से नहीं देखते। कहने का तात्पर्य यह है कि अमरसेकर के उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं को ऊपर उठाने की अपेक्षा सामाजिक परिस्थितियों को तथा उन सामाजिक परिस्थितियों के बदलाव के कारणों को उभारने का ज़्यादा अवकाश मिला है।

जैसा कि कहा गया है कि प्रगतिशीलता युगीन आयामों तथा संदर्भों को छोड़कर नहीं होती, ठीक उसी तरह अमरसेकर की प्रगतिशीलता का मानदण्ड भी हमें श्री लंकाई युगीन संदर्भों के सापेक्ष मानना चाहिए। भारत तथा श्री लंका पड़ोसी देश होते हुए भी दो राष्ट्रीय संस्कृतियों वाले देश हैं। दोनों देशों में बुर्जुआ-भूस्वामियों की संस्कृति अलग तथा जन साधारण की संस्कृति अलग है। इन दोनों देशों में कृषक-मज़दूरों और मध्यवर्ग की स्थिति भी अलग है। इसी कारण नागार्जुन की भाँति सर्वहारा वर्ग की अपने शोषण के खिलाफ़ संघर्ष करने की प्रवृत्ति अमरसेकर के उपन्यासों में नहीं मिलती। क्योंकि श्री लंका में भारत की तरह शोषित-पीड़ित तथा क्रांतिकारी सर्वहारा वर्ग की पैदाइशी ही नहीं हुई थी। श्री लंका में पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था के खिलाफ़ जनांदोलन का उदय तो हुआ है, परंतु उनका नेतृत्व सर्वहारा वर्ग के द्वारा नहीं, ग्रामीण मध्यवर्ग के युवाओं के द्वारा किया गया था, अतः अमरसेकर के उपन्यासों में उसी मध्यवर्ग का चित्रण व्यापक रूप में मिलता है। अमरसेकर ने वैचारिक रूप में उसी मध्यवर्ग को अपने अंतर्विरोधों को समझने के लिए तैयार करवाया है। युगीन सामाजिक समस्याओं के प्रति जो सिंह-दृष्टि अमरसेकर ने दिखायी है, ऐसी सिंहली साहित्य के अन्य उपन्यासकारों ने नहीं दिखायी है। इसी दृष्टि से अमरसेकर प्रगतिशील ज़रूर हैं।

समाज को शोषण से मुक्त करवाना नागार्जुन के अपने समय की सबसे बड़ी आवश्यकता थी। भारतीय जनता के शोषण के प्रति उदासीनता देखकर उन्हें जागरूक बनाने के लिए नागार्जुन ने अपने चिंतन और कर्म को संघर्ष का माध्यम बनाया है, अतः नागार्जुन प्रेमचंद से भी प्रगतिशील साहित्यकार माने जाते हैं। स्वतंत्रता के बाद श्री लंका के ग्रामीण समाज का विघटन अमरसेकर के अपने समय की सबसे बड़ी समस्या रही। वे साम्राज्यवादी आर्थिक नीतियों को स्वीकार नहीं करते। संपन्न वर्ग तथा पूँजीपति के प्रति उनमें हमेशा असंतोष रहा है, किंतु जब समस्याओं से मुक्त नये समाज के निर्माण की बात होती है, तब अमरसेकर का चिंतन वर्ग-चेतना से विरुद्ध राष्ट्र-चिंतन के धरातल पर मज़बूत होती है। किन्तु उनके उपन्यासों पर विहंगम दृष्टि डालने पर यह देखा जा सकता है कि प्रगतिशील दृष्टि अपनाते हुए अमरसेकर अपने उपन्यासों के माध्यम श्री लंका के आधुनिक इतिहास के सजीव चित्र प्रस्तुत करते हैं।

आलोच्य दोनों साहित्यकारों के उपन्यासों पर ध्यान देने से यह स्पष्ट होता है कि दोनों समाज के साथ प्रतिबद्ध हैं, जो प्रगतिशीलता का अनिवार्य मानदण्ड होता है। नागार्जुन की विचारधारा को व्यापक अर्थ में मानवीय और समाजोन्मुखी भी कह सकते हैं। अमरसेकर भी ऐसे कथाकार थे, जिन्होंने घोषित रूप में साहित्यिक कृतियों को सामाजिक सौद्देश्यता से जोड़ा और साहित्य की सामाजिक यथार्थवादी परंपरा का विकास किया। स्वयं उन्हीं के शब्दों में-

> किसी भी साहित्यकार की रचना में यदि सामाजिक तथा राजनीतिक दर्शन दृष्टव्य नहीं होता, तो उस साहित्य का सामाजिक सरोकार क्या हो सकता है? साहित्यकार बहुधा अपने देश तथा युग की परिस्थितियों से प्रभावित रहता है। अपने समाज से अलग रहना साहित्यकार के लिए असंभव है।
>
> (गामिणी 2013)

स्पष्ट है कि अमरसेकर ने सामाजिक दायित्व की भावना को सर्वोपरि माना है।

निष्कर्ष:

नागार्जुन तथा गुणदास अमरसेकर के उपन्यासों के अध्ययन के पश्चात् उनमें निरूपित प्रगतिशीलता की सीमाओं का कुछ अंतर भी दिखाई पड़ता है। इस संबंध में संक्षेप में यह कह सकते हैं कि नागार्जुन की तरह अमरसेकर ने अपने पात्रों को साहस और प्रतिरोध की शक्ति प्रदान नहीं की है। नागार्जुन के पात्र शोषण-अन्याय का विरोध करते हुए समाज, जीवन तथा अपनी दुनिया को परिवर्तित करने हेतु संघर्ष करते हैं। क्रांतिकारी पथ को अपनाते हैं, संगठित होकर लड़ते हैं।

स्पष्ट है कि नागार्जुन भारत के शोषित एवं अभावग्रस्त इंसानों के जीवन को सुधारने के लिए कृत संकल्प हैं, इसलिए उनके पात्र संघर्ष की आशा रखते हैं। वहीं गुणदास अमरसेकर के यहाँ ऐसे पात्रों का अभाव होता है, क्योंकि अमरसेकर के उपन्यासों में समाज की प्रगति, वर्ग-संघर्ष की दृष्टि से रेखांकित नहीं होती।यह भी हम देख सकते हैं कि अपनी उपन्यास-यात्रा के अंतिम चरण में आते-आते अमरसेकर की विचारधारा खंडित हो जाती है। अमरसेकर मार्क्सवादी हैं या राष्ट्रवादी हैं, इसे लेकर होनेवाली बहसें निरर्थक हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि अमरसेकर की विचारधारा नागार्जुन की तरह सुसंगत नहीं थी। अतः नागार्जुन के उपन्यासों में प्रगतिशील सामाजिक चेतना तथा अस्तित्व-

बोध की गहरी छाप अमरसेकर के उपन्यासों की अपेक्षा अधिक प्रभावी रूप में अंकित हुई है।

इस प्रकार दोनों के उपन्यासकारों का तुलनात्मक अध्ययन करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि नागार्जुन तथा अमरसेकर दोनों उपन्यासकारों को प्रगतिशील मानना आवश्यक है, परंतु नागार्जुन जन्मना ब्राह्मण होकर भी ब्राह्मण नहीं हैं और बुद्ध के शरण में जाकर भी बौद्ध नहीं हैं, वे केवल अपने परिवेश और लोक के हैं। यही कारण है कि वे अमरसेकर की अपेक्षा अधिक प्रगतिशील हैं।

ग्रंथ-सूची:

अमरसेकर, गुणदास.करुमक्कारयो.1989.

अरोरा, ललित.नागार्जुन: एक अध्ययन.1986.

गामिणी, कन्देपाल.मई लंकादीप.2013.

नागर्जुन.बलचनमा.1987.

--.नयी पौध.1999.

राय, आशुतोष.नागार्जुन का गद्य साहित्य.2006.

--. नागार्जुन का गद्य साहित्य. 2011.

संपर्क-सूत्र:
Career Counselor, University of Kelaniya
Visiting lecturer, University of Moratuwa
(M. Phil. in Hindi, Uniersity of Kelaniya
B. A. Special in Hindi, University of Kelaniya
PG Dip in Hindi, KHS, Agra, India)

शोध-चिंतन पत्रिका: सहयोगी विद्वानों द्वारा पुनरीक्षित ई शोध पत्रिका
अंक:3; जुलाई-दिसंबर, 2021; पृष्ठ संख्या: 12-22

हिंदी साहित्य में पूर्वोत्तर भारत: मणिपुर के विशेष संदर्भ में

✍ प्रो. यशवंत सिंह

शोध-सार :

हिन्दी का साहित्य अति समृद्ध है और इस साहित्य ने देश के साथ-साथ विदेशों के सैकड़ों घटनाओं-प्रसंगों को अपने विषय के रूप में ग्रहण किया है। हिन्दी साहित्य की इस व्यापकता में पूर्वोत्तर भारत को उतना महत्व नहीं मिला, जितना मिल सकता था। पूर्वोत्तर के असम पर आधारित रचनाएँ कुछ अधिक मिलती हैं। इस क्षत्र के दूसरे राज्यों की तरह मणिपुर पर भी साहित्यकारों की दृष्टि कम पड़ी है। अज्ञेय, देवेन्द्र सत्यार्थी, श्री प्रकाश मिश्र, विष्णुचंद्र शर्मा, श्रीधर पाण्डेय, रीतामणि वैश्य आदि ने पूर्वोत्तर भारत पर हिन्दी में रचनाएँ की हैं।

बीज शब्द : *हिन्दी साहित्य, पूर्वोत्तर भारत, मणिपुर।*

प्रस्तावना :

हिंदी साहित्य की शुरुआत पूर्वोत्तर भारत के असम प्रदेश से हुई, जहाँ पर सिद्ध-साधकों ने तंत्र- मंत्र प्रधान साधना का प्रचार-प्रसार साहित्य के माध्यम से किया। फिर भी पूरे मध्यकालीन हिंदी साहित्य में पूर्वोत्तर भारत की उपस्थिति नगण्य रही। आधुनिक भारतीय साहित्य में भी पूर्वोत्तर के प्रसंग बहुत कम मिलते हैं। भौगोलिक एवं प्राकृतिक सौन्दर्य से भरपूर पूर्वोत्तर भारत हिन्दी साहित्य में भी उपेक्षित ही रहा। अज्ञेय ने इस मनोरम क्षेत्र पर कई अमर रचनाएँ लिखी। वर्तमान समय में पूर्वोत्तर पर आधारित रचनाएँ होने लगी हैं। इनमें से कुछ रचनाएँ मणिपुर पर आधारित हैं।

विश्लेषण:

आधुनिक काल में अज्ञेय जी ने संभवतः पहली बार पूर्वोत्तर भारत को केंद्र में रखते हुए अनेक कविताएँ, कहानियाँ और यात्रा-वृतांत रचे। उनकी 'पावस प्रात, शिलांग' और

'दुर्वांचल' कविताएँ मेघालय के रमणीय सौन्दर्य को उजागर करती हैं-

पार्श्व गिरि का नम्र, चीड़ों में
डगर चढ़ती उमंगों-सी।
बिछी पैरों में नदी, ज्यों दर्द की रेखा।
विहग- शिशु मौन नीड़ों में, मैंने आँख भर देखा।
दिया मन को दिलासा - पुन: आऊँगा
भले ही बरस -दिन- अनगिन युगों के बाद !
क्षितिज ने पलक- सी खोली, तमक कर दामिनी बोली :
'अरे,यायावर ! रहेगा याद ?

(श्रीवास्तव, संपा 2003:08)

अज्ञेय की 'जयदोल', 'नीली हंसी', 'हिली बोन की बत्तखें', 'मेजर चौधरी की बापसी' और 'नगा पर्वत की घटना' आदि कहानियाँ पूर्वोत्तर भारत के समाज को केंद्र में रखकर रची गयी हैं। मेघालय की खासिया जनजाति की एक जवां युवती को केंद्र में रखकर रची गयी 'हिली बोन की बत्तखें' कहानी अपनी संवेदनशीलता तथा मार्मिकता के कारण विशेष रूप से हमारा ध्यान आकर्षित करती है। कहानी की नायिका हीली बोन यिर्वा 31-32 वर्ष की अविवाहित युवती है और अच्छी-अच्छी बत्तखें पालती है, जिन पर उसे गर्व है तथा जो उसकी जीविका का प्रमुख साधन हैं। लेकिन रात्रि के समय लोमड़ी आकर एक-दो बत्तखों को चट कर जाती है, जिस पर वह दुखी होती है। इसी समय फौज से छुट्टियों पर लौटे आगंतुक कैप्टन दयाल वहाँ पर उपस्थित होते हैं तथा रात्रि के समय डाकू लोमड़ी को मार देने का प्रस्ताव रखते हैं। हीली बोन थोड़ी झिझक के साथ प्रस्ताव तो स्वीकार कर लेती है लेकिन आगंतुक द्वारा नर लोमड़ी को बंदूक की गोली से घायल कर देने के पश्चात् वह मादा लोमड़ी व उसके छोटे-छोटे बच्चों को बिलबिलाते देखकर व्यथित हो जाती है तथा अपनी सारी बत्तखों की गर्दन डाओ से काटकर उनका वध कर देती है। दर-असल मृत नर लोमड़ी के परिवार को इस अवस्था में देखकर उसे वैधव्य की मार्मिक अनुभूति होती है तथा इसीलिए वह उसके कारण रूपी अपनी प्यारी बत्तखों के वध करने का कठोर निर्णय ले लेती है।

अज्ञेय ने अपने पहले यात्रा-वृतांत 'अरे यायावर रहेगा याद' (1953) में भी पूर्वोत्तर

भारत से संबन्धित तीन यात्रा-संस्मरण लिखे हैं; जिनमें से एक असम के सांस्कृतिक केंद्र 'माजुली' पर है, जिसके प्राकृतिक सौन्दर्य पर अज्ञेय का कवि मन मोहित है; साथ ही, वहाँ के लोगों के रीति-रिवाज, वहाँ की प्रकृति, जंगली जानवर सब मन को बहुत आकर्षित करनेवाले हैं। लेखक असम के लोगों की मानसिकता और उनके स्वभाव के बारे लिखते हैं-

> असमीया लोग खूब हँसते हैं, बाधाओं पर और भी अधिक हँसते हैं। इसलिए कि वे बाधा को बाधा मानते ही नहीं। वह तो केवल काम न करने की युक्ति है और काम न करना पड़े तो क्यों न हँसा जाये।
>
> (पालीवाल, संपा 2011:87)

पूर्वोत्तर भारत पर केन्द्रित यात्रा-संस्मरण लेखन की दृष्टि से सांवरमल सांगानेरिया द्वारा रचित 'ब्रह्मपुत्र के किनारे किनारे'(2006), 'अरुणोदय की धरती पर'(2008) और 'लोहित के मानसपुत्र: शंकरदेव'(2010) यात्रा-वृतांत भी उल्लेखनीय हैं, जो असम तथा अरुणाचल प्रदेश की पृष्ठभूमि पर लिखे गये हैं।

पूर्वोत्तर भारत को केंद्र में रखते हुए हिंदी साहित्य में कुछ उपन्यास प्रकाशित हुए, जिसमें पहला और महत्वपूर्ण प्रयास लोकगीतों के संग्रहकर्ता देवेंद्र सत्यार्थी का है, जिन्होंने 'ब्रह्मपुत्र'(1956) उपन्यास के माध्यम से असम प्रदेश के जनजीवन, रहन-सहन, तीज-त्योहार इत्यादि सांस्कृतिक गतिविधियों पर विस्तार से प्रकाश डाला है। शुरू में उपन्यास 'दिसांग-मुख' के लोगों के जनजीवन का मंथर गति से चित्रण करता है। यहाँ के निवासियों के मानसिक निर्माण में ब्रह्मपुत्र नदी का निर्णायक योगदान रहा है। पूर्वपीठिका में ही इस मानस को पहचानने के क्रम में लेखक कहते हैं-

> असमीया यथासंभव मर्यादा को नहीं छोड़ता है पर यदि कहीं उसके आत्मसम्मान को ठेस लगा दी तो बाढ़ के समय का ब्रह्मपुत्र बन जाता है। आतिथ्य में उसका जवाब नहीं। आज काम चल रहा है तो कल की चिंता क्यों की जाय और आने वाली विपत्ति आयेगी तो देख लेंगे।
>
> (सत्यार्थी 1956:12-13)

श्रीप्रकाश मिश्र द्वारा पूर्वोत्तर-प्रवास के दौरान प्राप्त अनुभवों के आधार पर लिखे गये

दो उपन्यास- 'जहाँ बाँस फूलते हैं'(1997ई.) और 'रूपतिल्ली की कथा'(2006) इस दृष्टि से विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं जो क्रमशः मिजोरम तथा मेघालय की पृष्ठभूमि को लेकर रचे गये हैं। इनमें से 'जहाँ बाँस फूलते हैं' उपन्यास में पूर्वोत्तर भारत के मिजोरम राज्य में पूर्व से ही व्याप्त असंतोष, विक्षोभ व विद्रोह के कारणों को लेखक ने पूरी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के आधार पर देखने-समझने का सार्थक प्रयास किया है। उपन्यासकार श्रीप्रकाश मिश्र भारत सरकार के खुफिया विभाग में कार्यरत अफसर थे। जब मिजोरम में विद्रोह चल रहा था तब 1976 ई. के आसपास भारत सरकार ने मिजोरम में उनकी तैनाती की थी, ताकि वे मिजों नेताओं से सरकार की बातचीत करा सके। वे दस साल से ज्यादा समय तक मिजों लोगों के बीच रहे तथा इस दौरान प्राप्त अपने से जीवंत अनुभवों को उन्होंने पूरी शिद्दत के साथ इस उपन्यास में पिरोया है। उपन्यास के शीर्षक के लिए लेखक ने मिजोरम में प्रचलित विइटम नामक जनश्रुति का सहारा लिया है, जिसके अनुसार - "मिजोरम में हर पचास साल की आवृत्ति पर वहाँ के बाँस फूलते हैं। उनके बीजों को खा-खाकर चूहे की विशेष प्रजाति अधिक बच्चे पैदा करती हैं, जो फसल खा जाते हैं, जिससे मिजोरम में अकाल पड़ जाता है। ऐसा ही अकाल मिजोरम में सन 1958 में पड़ा था, जिसके परिणाम स्वरूप 1966 का विद्रोह हुआ। इसकी परिणति मिजो नेता पु. लालदेवा और भारतीय प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी के मध्य सम्पन्न हुए ऐतिहासिक समझौते से हुई।

श्रीप्रकाश मिश्र का दूसरा उल्लेखनीय उपन्यास 'रूपतिल्ली की कथा' 19 वीं सदी में सांस्कृतिक संक्रमण के दौर से गुजर रहे मेघालय में बसने वाली खासी जनजाति के सामाजिक जीवन पर आधारित है। इस कालखण्ड में जहाँ एक तरफ अंग्रेज अपना वर्चस्व बढ़ाते हुए इस जनजाति के लोगों को ईसाई बनाने में लगे हुए थे, वहीं दूसरी ओर समीपवर्ती हिंदू नेतृत्व उन्हें हिंदू बनाने में संलग्न था। जबकि इस जनजाति के लोग दोनों से बचकर अपनी स्वतंत्र पहचान बनाये रखना चाह रहे थे। दरअसल उपन्यास का शीर्षक खासी जनजाति की मिथकीय चेतना

का परिचायक है, जो उनको गहरा आत्मविश्वास प्रदान करता है तथा विपरीत परिस्थितियों में भी उन्हें संघर्ष जारी रखने के लिए प्रेरित करता है। अंग्रेजी सेना से संघर्ष के दौरान लोगों में यह विश्वास और गहरे से पैठता है कि जब तक रूप तिल्ली पहाड़ी की चोटी पर डिडीयेई का वृक्ष खड़ा रहेगा और उसके साये में इन विचरती रहेगी तब तक यह इलाका अंग्रेजों का गुलाम नहीं होगा। लोगों के इसी विश्वास को तोड़ने के लिए अंग्रेज़ नवधर्मांतरित ईसाइयों के माध्यम से इस जादुई पेड़ को कटवा देते हैं, जिससे जनजाति के लोग हतोत्साहित हो जाते हैं तथा यहाँ अंग्रेज व ईसाइयत को विजय प्राप्त हो जाती है। इस तरह अपने पहले उपन्यास में लेखक ने जहाँ पूर्वोत्तर भारत में व्याप्त विद्रोह की समस्या के कारणों का विश्लेषण किया है वहीं दूसरे उपन्यास में उन्होंने जनजातियों में धर्मांतरण की समस्या तथा अपनी निजी पहचान को बचाये रखने के लिए किये जाने वाले संघर्ष को अभिव्यक्ति प्रदान की है।

इसी क्रम में 'नाइन हिल्स व वैली' के नाम से विख्यात अर्थात् नौ पर्वतमालाओं से घिरी मणिपुरी घाटी के प्रदेश को केन्द्र में रखकर लिखे गये दो उपन्यास 'उत्तर-पूर्व' (2002), लेखक- लालबहादुर वर्मा तथा 'आहुति' (2004), लेखक - श्रीधर पाण्डेय विशेष महत्वपूर्ण हैं। लेखकद्वय ने मणिपुर विश्वविद्यालय से सम्बद्ध रहकर, वहाँ से प्राप्त अनुभवों के आधार पर इन उपन्यासों को रचा है। इनमें से पहला उपन्यास 'उत्तर-पूर्व' शाब्दिक अर्थ में भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्र को द्योतित करता है, लेकिन इस संदर्भ में विष्णुचंद्र शर्मा ने उचित ही लिखा है-

> 'उत्तर-पूर्व' उपन्यास का नाम प्रतीकात्मक है और उसके दो अर्थ निकाले जा सकते हैं। एक है नार्थ-ईस्ट के संदर्भ में, दूसरा है जवाब मिलने से पहले सवालों के उमड़ने-घुमड़ने और टकराने का मंथन। इसमें जवाब न मिलने की पीड़ा भी है और उसे ढूंढने का रचनात्मक रोमांस भी।
>
> (वर्मा 2002:07)

ओजा वर्मन नामक पात्र के माध्यम से आत्मवाची शैली में रचा गया यह उपन्यास मणिपुरी समाज में व्याप्त असंतोष को हमारे

सामने प्रस्तुत करता है। जिसकी शुरुआत 1949 ईसवी से हुई जब मणिपुर प्रदेश का जबरन भारतीय संघ में विलय सम्पन्न हुआ। सीमावर्ती संवेदनशील क्षेत्र होने के कारण यहाँ पर फौजों का जमावड़ा बना रहा तथा उन्हें आर्म्स एक्ट जैसे असीमित अधिकार दिये गये। लेखक के अनुसार मणिपुर में जितने वयस्क पुरुष हैं उतने ही रंग-बिरंगे फौजी लगाने की क्या जरूरत है? क्यों इम्फाल के बीच में स्थित पारम्परिक राजधानी कांगला में दौड़ती फौजी गाड़ियां उनका सीना रौंदती लगती हैं?

उपन्यास में इबोहल नामक छात्र फौज की संवेदनहीनता का उस समय शिकार होता है, जिस समय वह मणिपुर विश्वविद्यालय में एम. ए. राजनीतिशास्त्र की परीक्षा में शामिल होने जा रहा था। विश्वविद्यालय के गेट पर तलाशी के नाम पर उसे पकड़ लिया जाता है तथा परीक्षा के लिए तैयार संक्षिप्त नोट्स को संदिग्ध मानकर उसे चार दिन हवालात में बंद करके प्रताड़ित किया जाता है। कुछ न हासिल कर पाने पर बगैर किसी क्षमा-याचना के उसे छोड़ दिया जाता है। लेकिन इबोहल का इससे भविष्य ही खराब हो जाता है, उसे विक्षिप्तावस्था में विश्वविद्यालय के उसके विभाग व परीक्षा विभाग के इर्द-गिर्द सुबह से शाम तक चक्कर लगाते देखा जाता है। इससे मणिपुरी लोगों में फौजियों के प्रति नफरत की भावना पनपती है; युवाओं में अलगाववादी प्रवृत्तियाँ जन्म लेती हैं तथा वे भूमिगत संगठनों में शामिल होने को प्रेरित होते हैं। उपन्यास का इराबो नामक बुद्धिजीवी पात्र इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है, जो अपनी उच्च शिक्षा के लिए भारत की राजधानी नई दिल्ली पहुंचता है, जहाँ पर उसमें मणिपुर के नायकों पर फ़िल्म बनाने का विचार पनपता है। लेकिन छुट्टियों के समय मणिपुर आने पर रात्रि के अंधकार में फौजी उसे घर से उठा ले जाते हैं। घोर प्रताड़ना के बाद छूटने पर वह भूमिगत संगठन में शामिल हो जाता है तथा संगठन में शामिल युवाओं को मानसिक रूप से प्रशिक्षित करता है। संयोगवश भूमिगत संगठन में उसकी वापसी होती है लेकिन उस मनोदशा से वह उबर नहीं पाता तथा अंतर्मुखी जीवन व्यतीत करता है। दरअसल मणिपुर की बहुत सारी समस्याएँ राजनीतिक अधिक हैं, जिनका निराकरण संवेदनशील बातचीत तथा उदारहृदय युक्त

समझौते से ही संभव है। यदि हम बलपूर्वक फौज द्वारा उनसे निपटना चाहेंगे तो स्थितियाँ और भी बिगड़ने लगती हैं। इस उपन्यास के माध्यम से लेखक एक ऐसे सेतु के निर्माण की कामना करते हैं जिससे सभी जुड़ सकते हैं। लेखक के अनुसार पिछले चालीस वर्षों में फौजी गाड़ियों और व्यापारी ट्रकों के लिए भले ही पुल बन गये हों, लेकिन व्यक्तियों, घरों, परिवारों को जोड़ने वाले पुल नहीं बने, न बनाने के प्रयास हो रहे है'। इस तरह बहुत सारे अनुत्तरित सवालों के साथ उपन्यास का समापन हो जाता है।

श्रीधर पाण्डेय द्वारा रचित 'आहुति' उपन्यास का कथानक मुख्य रूप से भारत के पूर्व की सीमा से 40 कि.मी. दूर स्थित उग्रवादी हिंसा तथा राजनीतिक अस्थिरता से ग्रसित मणिपुर की राजधानी इम्फाल शहर पर केन्द्रित है। लेखक के अनुसार-

> मणिपुर का सांस्कृतिक इतिहास सैकड़ों वर्ष पुराना है। हिमालय की पर्वत-श्रृंखलाओं में उत्तर-पूर्व के इस क्षेत्र में दुर्गम पहाड़ों को पारकर लोग पहुंचे होंगे। घाटी के चारों ओर पहाड़ों पर रहने वाली जन- जातियाँ सभ्यता के विकास में घाटी-निवासी मैतेयी लोगों से हजारों वर्ष पीछे रह गईं। जबकि घाटी के निवासियों ने कृषि का ज्ञान प्राप्त कर लिया और कृषि पर आधारित उनका समाज 15 वीं सदी में ही राजतंत्र की स्थापना कर चुका था।
>
> (पांडेय 2008:97)

कथा में एक मध्यवर्गीय मैतेयी परिवार की लड़की कन्नुप्रिया चानु का संपर्क एक हिंदी-भाषी बिहार प्रदेश के नवयुवक मनोज से होता है। मनोज एक किसान परिवार का बेटा है। स्वतंत्रता के चालीस वर्षों के बाद भी उत्तर भारत के ग्रामीण जीवन में बढ़ती आर्थिक निर्धनता के बीच बेकारी के देश से पीड़ित मनोज अपना गाँव छोड़ने को बाध्य होता है। गाँव और प्रदेश से हजारों कोस दूर मणिपुर में मनोज को शिक्षक की नौकरी मिल जाती है। साथ ही मनोज के संपर्क से चानु की मणिपुर में हिन्दी की शिक्षा पूरी होती है तथा वह मनोज के प्रोत्साहन पर उच्चशिक्षा प्राप्त करने हेतु काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रवेश लेती है। चानु की निकटता से मनोज को मणिपुर की पारिवारिक व सामाजिक व्यवस्था को जानने-

समझने का अवसर प्राप्त हुआ तथा चानु के युवावस्था प्राप्त करते-करते यह निकटता प्रेम का धारण कर लेती है।

चानु जब बनारस से वापस मणिपुर आती है तो उसके रसूखदार चचेरे भाई उस पर किसी मैतेयी व्यक्ति से ही शादी करने का दबाव बनाते हैं। लेकिन चानु इस दबाव को अस्वीकार कर मयांग मनोज के साथ शादी के बंधन में बंधने का साहस-भरा निर्णय लेती है। मनोज अपने सहकर्मी शिक्षक की सहायता से चानु को मोइराङ भगाकर ले जाता है, जहाँ दोनों शादी के बंधन में बंध जाते हैं। इसे चानु के चचेरे भाई बर्दाश्त नहीं कर पाते। शादी सम्पन्न होने के बाद जब वर- वधू पहली रात एक झोपड़ी में बिता रहे थे तभी काले लिबास में कुछ छाया-सी दिखलाई पड़ती है। आसन्न खतरे को भांपकर चानु झट से चित्त लेटे मनोज के शरीर के ऊपर अपने को डाल देती है। चिंगारी के साथ तड़तड़ की आवाज में गोलियां छूटती हैं तथा प्रेम की बलि-वेदी पर चानु अपने जीवन की आहुति देकर मनोज के प्राण बचा लेती है। उपन्यासकार आशाभरे शब्दों- "चानु का बलिदान घृणा और हिंसा को मिटाकर रहेगा, हमें उसका संदेश देश के कोने-कोने में ले जाना है"(पांडेय 2008:143) के साथ उपन्यास का अंत करते हैं।

अभी हाल ही में गौहाटी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में सहआचार्या के रूप में कार्यरत डॉ. रीतामणि वैश्य की मणिपुर पर केन्द्रित कहानी 'लोकटाक कब तक' पढ़ने को मिली; जिसमें लेखिका ने मणिपुर की यात्रा के अपने अनुभवों को बड़ी ही संजीदगी के साथ एकसूत्र में पिरोया है और मणिपुर में व्याप्त आतंकवाद की समस्या को मानवीय संवेदना के साथ जोड़ा है। इस कहानी का घटनाक्रम तीन प्रमुख पात्रों - नायिका जेरू, उसके बचपन का साथी दया और भूमिगत कनखाम्बकी पर केन्द्रित है। जेरू पुलिस अधिकारी की बेटी है, बचपन का साथी दया उससे तीन साल बड़ा है। जेरू और दया का साथ उनके युवावस्था प्राप्त होते-होते प्रेम- प्यार में तब्दील होने लगता है। दोनों मणिपुर की पारम्परिक पद्धति के अनुरूप घर से भाग आने का निर्णय लेते हैं। दो दिन किसी अज्ञात होटल में बिताकर तीसरे दिन वे मणिपुर की सुप्रसिद्ध झील लोकटाक का सौंदर्य

निहारने जा पहुंचते हैं। लेकिन शाम को घर वापस लौटते समय रास्ते में जेरू का अपहरण हो जाता है। जेरू की मुक्ति हेतु उसके पुलिस अधिकारी पिता से भूमिगत संगठन के लोग अपने कुछ साथियों को छोड़ने की शर्त रखते हैं। इधर जेरू को लोकटाक-स्थित एक तैरती झोपड़ी में कैद करके रखा जाता है, जिसकी निगरानी एक भूमिगत युवक करता है। जेरू पहले तो भूमिगत युवक से घृणा करती है तथा उसे लोकटाक झील, जो यहाँ के लोगों की जीविका का प्रमुख आधार है, उसको बरबाद करने के लिए उत्तरदायी ठहराती है। लेकिन धीरे-धीरे भूमिगत युवक के मध्य मानवीय संवेदनाएँ पनपती हैं। जेरू का पुलिस अधिकारी पिता भूमिगत संगठन के सदस्यों की शर्तें नहीं मानता, फलत: ऊपर से जेरू को मार डालने का आदेश आता है। लेकिन भूमिगत युवक जेरू को मार डालने की बजाय उसे वहाँ से भाग जाने के लिए उकसाता है। जेरू ऐसा करने में सफल होकर अपने पिता के घर पहुंचती है। जेरू की सकुशल वापसी पर उसका होने वाला पति दया उससे डॉक्टरी परीक्षण करवाने की बात करता है। जेरू बचपन से जानने वाले पुरुष साथी का यह रूप देखकर दंग रह जाती है तथा उसके मुख से हठात् 'ना' निकलता है। अगले दिन जब जेरू अखबार पढ़ रही होती है, तो उसकी नजर लोकटाक में मारे गये भूमिगत युवक के चित्र पर पड़ती है। 'भूमिगत सदस्यों की आपसी मुठभेड़ में वह युवक मारा गया था तथा उस पर पुलिस अफसर की बेटी को छुड़ाने का आरोप था। वह इंजीनियरिंग का छात्र था तथा चार साल पहले भूमिगत संगठन में भर्ती हुआ था। समाचार पढ़कर जेरू रोने लगती है, माँ के पूछने पर वह कहती है- "मुझे पता नहीं चला, जिंदगी का नाटक वह अकेले ही खेल गया।"(साहित्य यात्रा पत्रिका 2018:54)

अंत में 'इक्कीसवीं शती का मणिपुर' नामक कविता का उल्लेख करते हुए आलेख समाप्त करना चाहूँगा, जिसमें विकास की अंधी दौड़ के चलते बहुत कुछ पीछे छूट जाने का दर्द-कसक समाहित है -

"लोक्टाक" पट जाएगी बैंक- नोटों से,
हालीवुड- बस्तियाँ बसेंगी खेतों में।

मोइराङ की मोरियाँ बनेंगी 'मरिन ड्राइव',
हाथ में हाथ डाले घूमेंगे 'रेबेका- क्लाइव'।
जेब तो भरी रहेगी, पै दिल होगा खाली,
कहाँ मिलेगी याओशङ्" पे पैसा पीरो वाली।

कहाँ छमक के थिरकेगा यह थाबलचोडबा,
स्थान हो जाएंगे 'शोइबुम ङारी" औ 'इरोनबा'।
यार! 'बोड़ साहब' तो तुम बन जाओगे, पै एड़ी तक बाल छहराने वाली सनातोम्बी कहाँ से पाओगे।

(सिंह 1990)

ग्रंथ-सूची:

अज्ञेय.अरे यायावर रहेगा याद.नई दिल्ली:राजकमल प्रकाशन, 2015.

गीतांजलि.संपा.अज्ञेय कहानी संचयन.नई दिल्ली:राजकमल प्रकाशन, 2012.

देवराज.संपा.फागुन की धूल.इम्फाल:काङजम एंटरप्राइजेज, 1990.

पांडेय, श्रीधर.आहुति.प्रथम.पटना:जानकी प्रकाशन, 2008.

पालीवाल, रीतारानी, संपा.अज्ञेय और पूर्वोत्तर भारत.नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 2011.

मिश्र, श्रीप्रकाश.जहाँ बाँस फूलते हैं.दिल्ली:यश पब्लिकेशस, 2011.

मिश्र, श्रीप्रकाश.रूपतिल्ली की कथा.इलाहाबाद:लोकभारती प्रकाशन, 2006.

मिश्र, विद्यानिवास और रमेशचंद्र शाह.अज्ञेय काव्य स्तबक.नई दिल्ली:साहित्य अकादमी, 2010.

वर्मा, लालबहादुर.उत्तर-पूर्व.इलाहाबाद:इतिहासबोध प्रकाशन, 2002.

शर्मा, विष्णुचंद्र.आर्थकल्प.इलाहाबाद:इतिहासबोध प्रकाशन, 2004.

श्रीवास्तव, परमानंद और विश्वनाथ तिवारी, संपा.दिशांतर.वाराणसी:अनुराग प्रकाशन, 2003.

सत्यार्थी, देवेंद्र.ब्रह्मपुत्र.नई दिल्ली:एशिया प्रकाशन, 1956.

सिंह, किसुन.इक्कीसवीं शती का मणिपुर.इम्फाल:काङजम एंटरप्राइजेज, 1990.

पत्रिका:

वैश्य, रीतामणि."लोकटाक कबतक." *स्नेहिल*.2018:22-29.प्रिंट.

साहित्य यात्रा पत्रिका, वर्ष: 4, अंक: 16, अक्टूबर-दिसंबर, 2018.

संपर्क-सूत्र:
अध्यक्ष, हिंदी विभाग
मणिपुर विश्वविद्यालय, इम्फ़ाल

शोध-चिंतन पत्रिका: सहयोगी विद्वानों द्वारा पुनरीक्षित ई शोध पत्रिका
अंक:3; जुलाई-दिसंबर, 2021; पृष्ठ संख्या:23-35

'आधा गाँव' उपन्यास में चित्रित सांप्रदायिकता की समस्या

✍ डॉ॰ शरिफुज जामान

शोध-सार :

भारत विभाजन पर आधारित 'आधा गाँव' राही मासूम रज़ा का बहुचर्चित उपन्यास है। इसमें भारत विभाजन के समय की मानवीय पीड़ा को गंगौली के निवासियों के माध्यम से उजागर किया है। भारत की मिट्टी में सदियों से हिन्दुओं और मुसलमानों का जीवन पलता आ रहा था। पाकिस्तान बनने की मांग से पूर्व देश के हर एक गाँव में हिन्दू-मुसलमान दोनों संप्रदाय के लोग बड़े सौहार्दपूर्वक रहते थे। जैसे-जैसे देश की आजादी नजदीक पहुँचती गयी सांप्रदायिक वातावरण तीव्र होता गया। सांप्रदायिकता की भयानक आग ने देश के शहरों के साथ-साथ गाँवों को भी निगल लिया था। विवेच्य उपन्यास के रचनाकार का मानना है कि आजादी के ऐन वक्त और आजादी के बाद देश के सांप्रदायिक वातावरण को हिन्दू और मुसलमानों के कुछ महत्वकांक्षी नेताओ ने हवा दे रखी थी। दूसरी ओर, अंग्रेजों की 'फूट डालो, राज करो' नीति ने इस आग को भड़काने में सहयोग दिया था जो आम जनता की समझ से बाहर था। सन् 1947 में देश को आजादी तो मिली पर, बँटवारे की मार के साथ। हिन्दू बहुसंख्यक इलाके को लेकर हिंदुस्तान और मुस्लिम बहुसंख्यक इलाके को लेकर पाकिस्तान बना दिया गया। लोगों की आम धारणा थी कि विभाजन के बाद सांप्रदायिकता की जड़ें खत्म हो जाएंगी, लेकिन आजादी के सत्तर साल बाद भी यह खत्म होता हुआ नजर नहीं आता। प्रस्तुत शोधालेख में मूलतः व्याख्यात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धतियों के माध्यम से इसी ज्वलंत पहलू पर प्रकाश डाला गया है।

बीज शब्द : *सांप्रदायिकता, भारत, पाकिस्तान, धर्म, राजनीति।*

प्रस्तावना :

उपन्यास आधुनिक साहित्य की एक लोकप्रिय गद्य-विधा है। इस विधा का हिंदी में प्रादुर्भाव अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव-स्वरूप हुआ। इसका मतलब यह नहीं है कि भारत में उपन्यास जैसी विधा पहले से नहीं थी।

संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं में बहुत सारी नीति-कथाएँ एवं आख्यान मिलते हैं जो आधुनिककालीन उपन्यास साहित्य से मिलते-जुलते हैं। लेकिन उन नीति-कथाओं एवं आख्यानों को उपन्यास की परिभाषाओं में नहीं समेट सकते। वास्तविकता तो यह है कि इस गद्य-विधा का उद्भव यूरोप में हुआ था। परवर्ती समय में बांग्ला के माध्यम से यह विधा हिन्दी में आयी।

'उपन्यास' शब्द अपने मूल रूप में प्राचीन है। प्राचीन साहित्य में 'उपन्यास' शब्द का प्रयोग एकाधिक बार हुआ है। प्राचीन 'उपन्यास' शब्द का प्रयोग नाटक के प्रसन्न करनेवाले तत्व के लिए किया गया था। आज जिस रूप में 'उपन्यास' शब्द का प्रयोग आधुनिक साहित्य के लिए किया जाता है उस रूप में प्राचीन संस्कृत साहित्य में नहीं किया गया था। उपन्यास आधुनिक साहित्य की एक नितांत नवीनतम गद्य-विधा है। प्राचीन 'उपन्यास' शब्द और आधुनिक 'उपन्यास' शब्द में नाममात्र का साम्य है। आधुनिक 'उपन्यास' शब्द 'उप' उपसर्ग और 'न्यास' पद के संयोग से बना है। 'उप' का अर्थ है समीप और 'न्यास' का अर्थ है रचना, अर्थात् 'उपन्यास' -- जिसको पढ़कर पाठक को ऐसा लगे कि यह उसी की कथा है, उसी के जीवन की कथा को उसी की भाषा में कहा गया है।

इस विधा का क्षेत्र विशाल है तथा मानव-जीवन के सम्पूर्ण चित्रण के लिए यह उपयुक्त है। इसमें लेखक, पाठक और समीक्षक तीनों को समान रूप से आकर्षित करने की क्षमता है। उपन्यासकार अपने उपन्यास में कथानक को क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत करता है ताकि पाठक सहज ही उसके सन्देश को ग्रहण कर उससे प्रभावित हो सके। पाश्चात्य उपन्यासकार हेनरी फिल्डिङ (1707-1754) ने उपन्यास के विषय में कहा था–

> Novel is a comic epic in pros. It is the loosest form of the literary art, but its very freedom from all limitations allows it to give a fuller representation of real life and character than anything else can provide. (Prasad 2009:193)

विश्लेषण :

'आधा गाँव' उपन्यास के रचयिता तथा यथार्थ के धरातल पर विश्वास रखनेवाले

कलाकार डॉ॰ राही मासूम रज़ा हिंदी साहित्य के एक बहुमुखी प्रतिभाशाली साहित्यकार के रूप में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। उनको बचपन से ही अनुकूल साहित्यिक वातावरण मिला था। उनका सम्पूर्ण परिवार साहित्य एवं कला में रुचि रखता था। आरंभिक जीवन से ही साहित्यिक क्षेत्र में वे सक्रिय रहे। जब वे चौथी-पाँचवीं कक्षा में थे, तभी से उनको कहानी तथा काव्य-सृजन की प्रेरणा मिली थी। उनकी पहली कहानी 'तन्नु भाई' (1944) लाहौर से प्रकाशित पत्रिका 'नफसियत' में छपी थी। सन् 1950 में उनका पहला उपन्यास 'मुहब्बत के सिवा' उर्दू में प्रकाशित हुआ। सन् 1966 में उनका बहुचर्चित उपन्यास 'आधा गाँव' प्रकाशित हुआ, जिससे राही मासूम रज़ा का नाम उच्चकोटि के उपन्यासकारों में गिना जाने लगा। अपने जीवनकाल में उन्होंने हर एक साहित्यिक विधा में अपनी कलम चलाई।

'आधा गाँव' का कथासार

देश-विभाजनकालीन मुस्लिम जीवन की त्रासदी पर आधारित सन् 1966 में प्रकाशित 'आधा गाँव' राही मासूम रज़ा का बहुचर्चित उपन्यास है। उत्तर प्रदेश के गंगौली गाँव की भौगलिक सीमा के इर्द-गिर्द बुने गये इस उपन्यास में विभाजनकालीन भारत की सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक परिस्थितियाँ उभरकर आयी हैं। शिया मुसलमानों पर केंद्रित यह उपन्यास स्वाधीनता आंदोलन तथा भारत-विभाजन का ऐतिहासिक साक्ष्य है। देश के बँटवारे के समय मुसलमान दुविधा में पड़ जाते हैं कि वे भारत को अपनाएँ या पाकिस्तान चले जाएँ। इस दुविधा की स्थिति में 'आधा गाँव' के लोग भी जूझते रहे। अपने जन्म-स्थान गंगौली के प्रति बेहद मोहब्बत रखनेवाले उपन्यासकार राही मासूम रज़ा ने भोगे हुए सत्य को एकत्र करके इस उपन्यास को प्रस्तुत किया है।

विभिन्न जाति-उपजाति, भाषा-भाषी, धर्म, संप्रदाय के लोग सदियों से हमारे देश में एक साथ रह रहे हैं। 'आधा गाँव' में लेखक ने बताया है कि उत्तर प्रदेश की गंगौली भी एक ऐसी जगह थी जहाँ मुसलमान और हिंदू में खास भेदभाव न था। वे एक दूसरे के समारोहों और सामाजिक कार्यक्रमों में शामिल हुआ करते थे। आजादी की लड़ाई में भी दोनों ने बराबर की भागीदारी निभायी थी। परंतु, जब अंग्रेजों ने इस देश की राजनीतिक शक्ति प्राप्त की तो उनलोगों ने 'फूट डालो और राज करो' नीति अपनायी। इस नीति के तहत उन लोगों ने

भारत के नागरिकों को संप्रदाय के अनुसार अलग-अलग समूहों में बाँट कर रख दिया। परिणामस्वरूप भारत के विभिन्न धर्मावलंबी लोगों के बीच बैर भाव पैदा हुआ। भारत के गाँवों को प्रतिनिधित्व करनेवाले गंगौली में भी धर्मिक वातावरण बिगड़ने लगा।

सन् 1947 के परिप्रेक्ष्य में लिखे गये मुस्लिम जीवन की त्रासदी पर आधारित प्रस्तुत उपन्यास में मुख्य रूप से तीन बातें सामने आयी हैं- भारत-विभाजन, तत्कालीन मुस्लिम समाज और विभाजन के समय का अंतर्द्वंद्व। प्रस्तुत उपन्यास की कथा उस मन:स्थिति से गुजरने की व्यथा के रूप में वर्णित है,जो उस समय के मुसलमानों के मन में उपजी थी। जब-जब बँटवारे की बात आती है, तो पात्रों में अंतर्द्वंद्व स्पष्ट होता है। मुसलमानों के लिए अलग मुल्क की बात आती है तो अपनी जमीन का मोह जाग उठता है। पाकिस्तान बना तो गंगौली किस तरफ रहेगा ? दो राष्ट्रों के बीच गंगौली के निवासी पीसे जाते हैं। फुन्नन मियां जैसे मुस्लिम पात्र इस्लाम धर्म की बुनियाद पर बने पाकिस्तान का नाम लेना ही नहीं चाहते, क्योंकि उनकी जड़ें गंगौली की जमीन में धंसी हैं।

उपन्यासकार राही मासूम रज़ा ने विभाजन का दर्द झेला था। उन्हें इस बात का एहसास था कि सांप्रदायिक सौहार्द के बिना देश का समुचित विकास संभव नहीं है। प्रस्तुत उपन्यास के जरिए उन्होंने आजादी के पूर्व की मानसिक स्थिति, आजादी के बाद लोगों में आयी तनहाइयों को जीवंत रूप में प्रस्तुत किया है। यथार्थ की पृष्ठभूमि और वास्तविक घटनाओं में रसे-बसे पात्रों ने हर तरह से उपन्यास को मजबूती प्रदान की है।

भारतीय जीवन में धर्म का प्रमुख स्थान है। धर्म शब्द का प्रयोग प्राचीन काल से होता आ रहा है। धर्म एक ऐसा साधन है, जो मनुष्य को आध्यात्मिक पोषण देता है, अंधकार से दिव्यता की ओर ले जाता है, नैतिक चेतना के पथ पर अग्रसर कराता है। धर्म शब्द का प्रथम प्रयोग ऋग्वेद में मिलता है। इस संबंध में आलोचना करते हुए समीक्षक बाबूराम कहते हैं-

> 'धर्म' शब्द सर्वप्रथम 'ऋग्वेद' में प्रयुक्त हुआ है। 'धर्म' शब्द 'धृ' धातु से 'मन्' प्रत्यय लगाकर बनता है। 'धृ' धातु का अर्थ है-धारण करना। इस प्रकार जो भी धारणीय है, उसे धर्म कहते हैं। (बाबूराम 2002:115)

संस्कृत व्याकरण के हवाले से 'राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में समकालीन संदर्भ' में धर्म शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार दी गयी है-

> धृ धातु से धर्म शब्द की उत्पत्ति मानी जाती है, जिसका तात्पर्य है धारण करना, आलम्बन देना या पालन करना आदि। अत: जो तत्व सारे संसार के जीवन को धारण करता हो, जिसके बिना लोक संस्कृति संभव न हो, जिसके सब कुछ संयमित, सुव्यवस्थित एवं सुसंचालित रहे उसे धर्म कह सकते हैं।
> (जायसवाल 2009:202)

'मनुस्मृति' में धर्म का लक्षण इस प्रकार दिया गया है--

> अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रह:।
> एतं सामासिक धर्म चातुर्वण्येववीन्मनु।।
> (बाबूराम 2002:116)

अर्थात्, अहिंसा, सत्य, अस्तेय अर्थात चोरी न करना, शौच अर्थात शुद्ध या पवित्रता और इंद्रिय दमन–ये चारों वर्णों के सामान्य धर्म हैं।

प्राचीन भारतीय मनीषियों ने धर्म पर वैज्ञानिक ढंग से विचार करने का प्रयत्न किया था। इसके विपरीत विश्व के अन्य देशों में धर्म के संबंध में इतना व्यापक चिंतन देखने को नहीं मिलता। वैशेषिक दर्शन के प्रणेता कणाद की धर्म-संबंधी व्याख्या के बारे में शिवदत्त ज्ञानी लिखते हैं-

यतोऽभ्युदय नि:श्रेयससिद्धि:स धर्म:-अर्थात् जिससे अभ्युदय व नि:श्रेयस की सिद्धि हो वह धर्म है।

(ज्ञानी 1944:201)

अभ्युदय से लौकिक और नि:श्रेयस से पारलौकिक उन्नति एवं कल्याण का बोध होता है। जीवन के ऐहिक एवं परलौकिक दोनों पहलुओं से धर्म को संबोधित किया गया था।

'हिंदी विश्वकोश' में धर्म की व्याख्या इस प्रकार मिलती है--

> वह आचरण या वृति, जिससे जाति वा समाज की रक्षा और सुख-शांति की वृद्धि हो तथा परलोक में अच्छी गति मिले।
> (वर्मा,वसु 1986:200)

'आदर्श हिंदी शब्दकोश' के अनुसार धर्म का अर्थ है-

> सुकृत, सत्कर्म, पुण्य, सदाचार वह आचरण, जिससे समाज की रक्षा और कल्याण हो, सुख शांति की वृद्धि और परलोक में सद्गति प्राप्त हो...।
> (पाठक 2015:382)

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि 'धर्म' और 'नीति' दोनों एक सिक्के के दो पहलू

हैं। नीति का सैद्धांतिक रूप धर्म है और धर्म का व्यावहारिक रूप नीति है। धर्म में जब नैतिकता का अभाव होता है, तब सांप्रदायिकता का जन्म होता है। यह एक संकीण विचारधारा है, जो लोगों को धर्म के नाम पर बाँटती है। सांप्रदायिकता उस राजनीति को कहा जाता है जो धार्मिक समुदायों के बीच विरोध या झगड़े पैदा करती है। आपसी मतभेद नेता को सम्मान देने के बजाय विरोधाभास उत्पन्न करता है। इससे व्यक्ति किसी अन्य धर्म के विरोध में अपना व्यक्तित्व प्रस्तुत करे, तो उसे सांप्रदायिकता कहते हैं। 'आधा गाँव' के उपन्यासकार राही मासूम रज़ा सांप्रदायिकता को राजनीतिक गर्भ से पैदा हुआ साँप मानते हैं।

'आधा गाँव' उपन्यास में चित्रित सांप्रदायिकता :

देश की आजादी का आंदोलन जितना तीव्रतर होता गया सांप्रदायिक वैमनस्य भारतीय राजनीति में मजबूत होता गया। उन दिनों सत्ताधारियों एवं राजनीतिज्ञों को देश और समाज से ज्यादा अपनी कुर्सी प्यारी थी। इसलिए वे लोगों को धर्म के आधार पर बाँटकर राजनीति की रोटी सेंक रहे थे। इस राजनीतिक योजना के तहत धार्मिक स्थलों पर ही राजनीतिक बैठकें आयोजित की गयी थीं। धर्म के प्रमुखों को राजनीति में शामिल करके सांप्रदायिक राजनीति का जहर फैलाया गया था। मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे आदि राजनीतिक प्रेक्षागृह में बदल गये थे तथा बाबा, महात्मा, पुजारी, मुल्ला आदि राजनीतिक ठेकेदार बन गये थे। वे लोगों को नैतिकता का पाठ देने के बजाय अपने संप्रदाय को दूसरे के खिलाफ भड़काते थे। विभाजनकालीन ऐसी परिस्थितियों को उजागर करने के लिए उपन्यासकार राही मासूम रज़ा ने विभिन्न धर्म, जाति, संप्रदाय से परिपूर्ण गंगौली नामक गाँव को चुना। यह गाँव सांप्रदायिक सौहार्द का प्रतीक है। सांप्रदायिक संप्रीति का इससे बढ़कर क्या उदाहरण क्या हो सकता है कि -- मुहर्रम के दिन ताजिये के आगे चलनेवालों की कतार हिंदुओं की हो, कब्रग्राहों पर चादर चढ़ाने वाली मनोवृत्तियाँ हिंदुओं में हों तथा मियां लोग दशहरे के लिए चंदा दें, मंदिर बनाने के लिए मुस्लिम जमींदार जमीन देकर प्रोत्साहित करते हों। यह गाँव तत्कालीन भारतवर्ष के गाँवों का प्रतिनिधित्व करता है।

सांप्रदायिक एकता के प्रतीक इस गाँव की हवा में भी राजनीति किस प्रकार

सांप्रदायिक जहर घोलने का काम करती है इसका सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत करता है यह उपन्यास। इसके लिए 'आधा गाँव' के उपन्यासकार ने हिंदू और मुसलमान दोनों समूहों में अनेक सांप्रदायिक पात्रों का निर्माण किया है। हिंदू पात्रों में मास्टर साहब, मातादीन, स्वामीजी और मुसलमान पात्रों में अब्बास, अनवारूल हसन, अलीगढ़ से आये काली शेरवानी पहने दो युवक आदि प्रमुख हैं।

उपन्यासकार राही ने उल्लेख किया है कि सन् 1857 की जनक्रांति के समय गंगौली में हिंदू-मुस्लिमों में एकता थी। दोनों संप्रदायों ने एकजूट होकर उस विद्रोह में हिस्सा लिया था, जिसे देखकर अंग्रेज डर गये थे। भारत में बने रहने के लिए भारतीयों बाँटना उनलोगों के लिए जरूरी था। वे कभी हिंदुओं का पक्ष लेकर तो कभी मुसलमानों का पक्ष लेकर दोनों संप्रदायों को एक-दूसरे के खिलाफ लड़वाते थे। परिणामस्वरूप धर्म की बुनियाद पर कुछ राजनीतिक पार्टियों का जन्म हुआ। देश के दो प्रमुख धार्मिक समुदाय हिंदू और मुसलमान दोनों नाना प्रकार के पूर्वाग्रहों से ग्रसित थे, जिसका गलत फायदा इन राजनीतिक पार्टियों ने उठाया था। उन दिनों उत्तर प्रदेश का अलीगढ़ मुस्लिम लीग का मुख्य प्रचार-केंद्र हुआ करता था। गाँव से पढ़ाई के लिए अलीगढ़ गये मुस्लिम लड़के गाँव आकर जिन्ना (मुस्लिम लीग के अध्यक्ष) की राजनीति समझाकर ग्रामीण मुसलमानों को भड़काते हैं। वे भोले-भाले ग्रामीणों के बीच में मनगढ़त बातें फैलाते हैं। इसके परिणामस्वरूप हिंदू-मुस्लिम एकता खण्डित होकर देश के गाँवों का महौल विषैला बन जाता है। यह सांप्रदायिकता अलीगढ़ शहर से होती हुई धीरे-धीरे अन्य गाँवों की तरह गंगौली को भी निगल लेता है, जिसे देखकर उपन्यासकार कहते हैं–

> गंगौली में गंगौलीवालों की संख्या कम होती जा रही है और सुन्नियों, शीओं और हिंदुओं की संख्या बढ़ती जा रही है।
>
> (रज़ा 2015:13)

लीग के सदस्य अब्बास गंगौली के मुसलमानों को भावात्मक तरीके से आह्वान कर उनमें नफरत भरता है। लीग का अन्य एक कार्यकर्ता अनवारुल हसन राकी और अलीगढ़ से आये काली शेरवानी पहने दो युवक जिन्ना को मुस्लिम नेता कहकर पाकिस्तान के समर्थन में वोट डालने के लिए कहते हैं। तब तक राजनीति से अनजान ग्रामीण मुसलमानों को पाकिस्तान के बारे में कुछ जानकारी थी ही

नहीं। मुस्लिमों के लिए अलग मुल्क पाकिस्तान बनने की बात जब अब्बास लोगों से कहता है तब उन्हें लगने लगता है कि अब्बास जो कुछ कह रहा है वह सही होगा; क्योंकि वह पढ़ा-लिखा है और अपने ही गाँव का है इसलिए विश्वास का लायक है। पढ़े-लिखे एक नौजवान द्वारा कहे जाने के कारण अनपढ़ ग्रामीण आसानी से बात मान लेते हैं। ग्रामीण स्त्री गफूरन कहती है-

> अब मियाँ, आप पढ़े- लिखे हैं, ठीक ही कहते होंगे। (रज़ा 2015:58)

इनके बहकावे में आकर अनपढ़ गफूरन और सितारा जैसी ग्रामीण स्त्रियाँ चुपचाप उसकी बातों को स्वीकारने लगती हैं। अनवारुल हसन राकी ग्रामीण मुस्लिमों को कभी पाकिस्तान का सपना दिखाता है, कभी सरहद पर ही जायदाद के बँटवारे करने का प्रलोभन देता है, कभी जमींदारी कानून के नाम से डराता है, कभी काँग्रेस पर आरोप लगाकर स्वतंत्र देश की माँग करने के लिए मुसलमानों को प्रेरित करता है–

> काँग्रेस हिंदुओं की पार्टी है। चूँकि मुसलमान जमींदार ज्यादा हैं, इसलिए यह जमींदारी जरूर खत्म करेगी। त देहातन में मुसलमान कै घर हैं ? दाल में नमक की तरह त हैं।
>
> (रज़ा 2015:51)

सांप्रदायिकता के निर्माण में आर्थिक कारणों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। गंगौली के ज्यादातर निवासी जमींदारी से ताल्लुक रखते थे। उन्हें यह डर सताने लगता है कि हिंदू बहुसंख्यकवाले भारत में काँग्रेस की सरकार बनेगी तो उनकी जमींदारी चली जायेगी। उन्हें लगा लीग को वोट डालने से उनकी जमींदारी बचेगी। लीग के इस नारे से मुस्लिम जनता की मानसिकता में परिवर्तन आता है। उनकी मानसिकता इतनी गिर जाती है कि वे सोच नहीं पाते कि देश के अन्य प्रांत में हिंदू जमींदार भी हैं, उनके साथ उनकी भी जमींदारी खत्म हो जायेगी। हिंदू और काँग्रेस के विरोध में लीग जो साजिश रचता है, उसमें आधा गाँव के मुसलमान फँस जाते हैं। फुन्नन मियाँ जैसे लोग लीग के षड़यंत्र से वाकिफ थे। वे लीग के सांप्रदायिक सोच का पर्दाफाश करते हैं, तो उन्हें मुस्लिम समाज से बहिष्कृत करा दिया जाता है। उनकी लड़की रजिया के निधन पर गाँव के लोग जनाजे में शामिल तक नहीं होते हैं।

काली शेरवानी पहने आये दोनों युवक लीग तथा जिन्ना की राजनीति से मुसलमानों को भ्रमित कर सांप्रदायिक द्वेष फैलाते हैं। प्रारंभ में उनके लिए गंगौली में सांप्रदायिक जहर फैलाना कठिन हो रहा था; क्योंकि गंगौली के निवासी बहुत ही मिलनसार और अपनी जमीन से बेतहाशा प्यार करनेवाले थे तथा देश की राजनीति से अनभिज्ञ थे। इसलिए वे कभी इस्लामिक मुल्क पाकिस्तान के सपने दिखाकर, कभी अंग्रेजों के जाने के बाद हिंदू-प्रधान भारतवर्ष में मुसलमानों का अस्तित्व खतरे में आ जायेगा, अपने अधिकार छीने जायेंगे-- जैसे डर पैदा कर लोगों को सांप्रदायिक बना रहे थे--

> पाकिस्तान बना तो ये आठ करोड़ मुसलमान यहाँ अछूत बनाकर रखे जायँगे।
>
> (रज़ा 2015:239)

वे कहते हैं कि हिंदू-राज आ गया यानी काँग्रेस की सरकार बनी, तो हिंदू मुसलमानों पर अत्याचार करेंगे, मुसलमानों को जबरन हिंदू बनाया जायेगा। पाकिस्तान न बना तो मुसलमानों के लिए जीना दूभर हो जायेगा। अभी समय रहते ही लीग का समर्थन करना चाहिए, बाद में अपनी गलती का एहसास करके कोई फायदा नहीं होगा --

> ठीक है, लेकिन जब हिंदू आपकी माँ-बहन को निकाल ले जायँ तो फ़र्याद न कीजिएगा।
>
> (रज़ा 2015:240)

धर्म-जैसे संवेदनशील विषय को जब राजनीति से जोड़ दिया जाता है तो लोग कट्टर बन जाते हैं, इसके चलते अपने धर्म की हर बात अच्छी लगती है और दूसरे धर्म की सभी बातों से वे नफरत करने लगते हैं। नमाज़, मस्जिद, कुरान आदि के नाम पर मनगढ़त बातों से वे लीगी सदस्य लोगों को गुमराह करते थे --

> इसी नमाज़ के बचाव के लिए तो पाकिस्तान की जरूरत है।
>
> (रज़ा 2015:241)

एक दूसरे प्रसंग में वे कहते हैं -

> हमारी मस्जिद में गायें बांधी जायेंगी।
>
> (रज़ा 2015:240)

फिर-

> क़ुरआन में कहाँ-कहाँ अल्लाह मियाँ ने मुस्लिम लीग को वोट देने का हुक्म दिया है।
>
> (रज़ा 2015:248)

अलग पाकिस्तान की माँग के लिए समर्थन जुटानेवालों के लिए राजनीतिक चरित्र लीग-प्रमुख जिन्ना मुसलमान चरित्र बन जाता है। वे मुस्लिमों के हितों के लिए पाकिस्तान के निर्माण का मुद्दा लेकर घर-घर जाते हैं। लीग को वोट देना हर मुस्लिम का धार्मिक कर्तव्य है। इस्लामिक राष्ट्र की कल्पना तभी संभव है, जब मुसलमान लीग को वोट देंगे। काली शेरवानी पहननेवाला एक युवक कहता है--

> ....और सबसे बड़ी बात तो यह है कि दुनिया के नक्शे पर एक और इसलामी हुकूमत का रंग चढ़ जायेगा। और यह भी नामुमकिन नहीं कि दिल्ली के लाल किले पर एक बार फिर सब्ज इसलामी परचम लहराता नजर आये। अगर पाकिस्तान न बना...
>
> (रज़ा 2015:248)

लीगी समर्थक काँग्रेस और काँग्रेसी नेताओं के प्रति घृणा पैदा करने के लिए लोगों के सामने जिन्ना साहब की भूरि-भूरि प्रंशसा करते हैं। वे कहते हैं कि मुसलमान हुकूमत करने के लिए जन्मे हैं, जिन्ना मुस्लिम की ताकत है, इसलिए उनका साथ देना हर एक मुसलमान का फ़र्ज बनता है। सत्ता-प्राप्ति के लिए अलग पाकिस्तान की माँग करनेवाले जिन्ना को पीर का दर्जा तक देते हैं-

> अल्लाह की रस्सी को महबूती से पकड़िये। आज उस रस्सी का नाम मुहम्मद अली जिन्ना है। आप अल्लाह की ताकत हैं। उठिये और कहिये कि आप पाकिस्तान बनाना चाहते हैं।
>
> (रज़ा 2015:249)

ऐसे तमाम धार्मिक तर्कों से प्रभावित होकर भोले-भाले ज्यादातर ग्रामीण लीग को वोट देना मजहबी फ़र्ज समझ बैठते हैं। हम्माद मियाँ के मन में परिवर्तन होना और कर्बला से आने के बाद दाढ़ी बढ़ाना सांप्रदायिक विषाणु का ही परिणाम है। वह कहता है-

> मैं तो मुसलिम लीग को वोट दूँगा।
>
> (रज़ा 2015:213)

विभाजन-पूर्व भारत में अँग्रेज की नीति कायम थी। अँग्रेज अपनी कूटनीति से कभी मुस्लिमों को अपने करीब लेकर फुसला रहे थे तो कभी हिंदुओं को। हिंदू जनता भी इस चाल को समझ नहीं पायी। हिंदुओं के पुनरुत्थानवादी संगठन, हिंदू पण्डित और पढ़े-लिखे युवक सांप्रदायिक जहर फैला रहे थे। हिंदू संगठन हमेशा अपना अतीत गौरव, वीरता आदि समूह पर थोपकर लोगों को मुस्लिमों के

खिलाफ भड़का रहे थे। उपन्यास का हिंदू पात्र मास्टर साहब छिकुरिया से बहस करते समय इमाम नाम सुनकर बौखला जाता है और कहता है-

> इन मलिच्छों ने तो भारतवर्ष तहस-नहस कर दिया है। मंदिरों को तोड़-ताड़कर मस्जिदें बनवा ली हैं इन पापियों ने।
>
> (रज़ा 2015:173)

मास्टर साहब की यह बात छिकुरिया नहीं मानता, क्योंकि उसने वर्षों से गाँव का मंदिर वहीं देखा, जहाँ पहले था। हिंदू सदियों से अपनी पीढ़ी दर पीढ़ी यह बताते आ रहे हैं कि मुस्लिम शासकों ने मंदिरों को तोड़कर वहाँ मस्जिदें बनवाई हैं, हिंदुओं पर अत्याचार किया है। इसके कारण हिंदुओं की पीढ़ियाँ सदियों से मुस्लिमों से नफरत करती आ रही हैं। मास्टर साहब समाज को नैतिकता, भाईचारा और अमन के पाठ पढ़ाने के बजाय नफरत के पाठ पढ़ाने में लगे हुए थे। हिंदू पीढ़ियों से वही बातें सुनते आ रहे हैं, लेकिन वे भूल गये कि हमारी नस्ल एक ही है। मास्टर साहब भूल गये थे कि जाकिये ने मंदिर के लिए पाँच एकड़ जमीन दी थी। धर्म के संस्थापक स्वामीजी नैतिकता का पाठ पढ़ाने के बजाय सांप्रदायिक जहर फैलाना अपना कर्तव्य मानते हैं। वे हिंदुओं को ललकारते हैं-

> ....तब भगवान कृष्ण ने कहा, हे अर्जुन ! हूँ तो मैं हूँ और मेरे सिवाय कोई और नहीं है। आज वह मुरली मनोहर भारत के हर हिंदू को पुकार रहा है कि उठो और गंगा और यमुना के पवित्र तट से इन मलेच्छ मुसलमानों को हटा दो....
>
> (रज़ा 2015:275)

स्वामीजी के उपस्थित लोगों के प्रति सम्बोधन से प्रभावित होकर हिंदू बौखला जाते हैं। इसका बराबर फायदा उठाते हुए स्वामीजी आगे कहते हैं-

> ...धर्म संकट में है। गंगाजली उठाकर प्रतिज्ञा करो कि भारत की पवित्र भूमि को मुसलमानों के खून से धोना है....देखो, कलकत्ता और लाहौर और नवाखाली में इन मल्लेच्छ तुर्कों ने हमारी माताओं का कैसा अपमान किया है... (रज़ा 2015:274)

इस प्रकार धर्म का संदेश देनेवाले महंत लोग मनुष्यता की सीख देने के बजाय सांप्रदायिक बातों से लोगों को भड़काते हैं। सदियों से मुसलमानों के साथ रह रहे हिंदू सोचने लगते हैं कि मुसलमान आखिर

मुसलमान हैं, वे भरोसे के पात्र नहीं बन सकते। भीड़ को उत्तेजित कर स्वामीजी दूसरे गाँव की तरफ चले जाते हैं। इधर उत्तेजित भीड़ 'जय बजरंग बली की जय !' नारा लगाते हुए बारिखपुर के मुसलमानों के घर जलाने के लिए अग्रसर होते हैं। धीरे-धीरे हिंदू- मुसलमानों में तनाव बढ़ता है।

अलीगढ़ से आये युवक, मुस्लिम लीग और कट्टर हिंदुत्व की सोच रखनेवाले आर.एस.एस., हिंदू महासभा, बजरंग दल जैसे संगठनों के ऐसे प्रचारों तथा कर्मों से सांप्रदायिक दंगों की बाढ़-सी आ जाती है। ऐसा सांप्रदायिक सोच देश-विभाजन का जिम्मेदार कारक रहा। सांप्रदायिक शक्ति देश-विभाजन के बाद भी थमती हुई नजर नहीं आती। फुन्नन मियाँ का लड़का मुन्ताज 'भारत छोड़ो' आंदोलन में शहीद हुआ था। शहर में आयोजित जलसे में मुसलमान होने के कारण नेता मुन्ताज का नाम नहीं लेता, जिससे फुन्नन मियाँ अंदर से टूट जाता है। देश के नाम पर हुई कुर्बानियाँ भी धर्म के आधार पर गिनी जाने लगी थीं।

निष्कर्ष :

राजनीतिक योजना के तहत हिंदू नेताओं द्वारा हिंदुओं में और मुसलमान नेताओं द्वारा मुसलमानों के मन में अज्ञात डर फैलाकर लोगों के मन में नफरत फैलायी गयी थी। सांप्रदायिकता को बढ़ावा देने में अनपढ़ ग्रामीण लोगों की तुलना में शिक्षित शहरी वर्ग ज्यादा जिम्मेदार रहा। हिंदू और इस्लाम धर्मों के कुछ विश्वास तथा आदर्श भी जिम्मेदार रहे -- जो अपने धर्म को श्रेष्ठ मानते तथा दूसरे धर्म से नफरत करने के लिए उकसाते हैं। 'आधा गाँव' उपन्यास में उपन्यासकार सांप्रदायिकता जैसे संकीर्ण सोच के विरुद्ध आगाह करते हैं कि -- देश के बँटवारे से नहीं, अपितु मानसिकता के परिवर्तन से ही सांप्रदायिकता-जैसी बीमारी और विकट समस्या को दूर किया जा सकता है। आजादी से पहले की स्थिति को देखकर बहुत लोगों ने सोचा था कि भारत-पाकिस्तान के रूप में अलग-अलग मुल्क बन जाने के बाद सांप्रदायिकता की जड़ें खत्म हो जायेंगी। लेकिन पाकिस्तान बन जाने के बाद भी सांप्रदायिकता की समस्या का कोई समाधान नहीं हो पाया बल्कि, यह समस्या पीढ़ी दर पीढ़ी तक बढ़ती गई। आज भी चुनाव के मैदान में इस दर्द को घसीटा जाता है ताकि लोगों को बाँटा जा सके।

ग्रंथ-सूची :

जायसवाल, शैलजा.राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में समकालीन संदर्भ. कानपुर: चन्द्रलोक प्रकाशन, 2009.

ज्ञानी, शिवदत्त. भारतीय संस्कृति. मुंबई: भारतीय भवन, 1944.

पाठक, रामचन्द्र, संपा. आदर्श हिंदी शब्दकोश. पुनर्मुद्रण. वाराणसी: भार्गव बुक डिपो, 2009.

बाबूराम. हिंदी निबंध साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन. प्रथम संस्करण. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 2002.

रज़ा, राही मासूम. आधा गाँव. चौदहवीं आवृति. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2015.

वसु, धीरेन्द्र नाथ वर्मा, नगेन्द्र, संपा. हिंदी विश्वकोश. वाराणसी: नागरी प्रचारिणी सभा, 1986.

Prasad, B. A BACKGROUND TO THE STUDY OF ENGLISH LITERATURE. New Delhi: Macmillan publishers India Limited, 2009.

संपर्क-सूत्र:
सहायक शिक्षक
दक्षिण चिनाकोना उच्च माध्यमिक विद्यालय
ओदालगुरि

शोध-चिंतन पत्रिका: सहयोगी विद्वानों द्वारा पुनरीक्षित ई शोध पत्रिका
अंक:3; जुलाई-दिसंबर, 2021; पृष्ठ संख्या : 36-48

महापुरुष श्रीमन्त शंकरदेव के बरगीतों में श्रीकृष्ण

✍ पूजा शर्मा

शोध-सार :

मध्यकालीन अखिल भारतीय भक्ति-आन्दोलन के कर्णधारों में महापुरुष श्रीमन्त शंकरदेव (ई॰ 1449-ई॰ 1568) अन्यतम हैं। एकशरण भागवती वैष्णव धर्म (एकशरण नाम धर्म) के प्रवर्तक-प्रचारक श्रीमन्त शंकरदेव मूलतः श्रीकृष्ण (भगवान् विष्णु) के परम भक्त थे। उन्होंने 'श्रीमद्भागवत' में प्रतिपादित– 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' – इस तत्व-कथन को शिरोधार्य करते हुए अपने जीवन, कर्म, आदर्श और साहित्य के जरिए दुःखी-तापित जनता के लिए कृष्ण-भक्ति का अमोघ मार्ग प्रशस्त किया।

महापुरुष श्रीमन्त शंकरदेव ने एक साहित्यकार के रूप में काव्य, नाटक, गद्य और गीतों की रचना द्वारा असमीया साहित्य-भण्डार को समृद्ध किया। उनकी अनुपम सृष्टि 'बरगीत' उनके कृष्ण-भक्त-हृदय के निचोड़ माने जाते हैं। ये बरगीत शास्त्रीय संगीत के रूप में पूर्वोत्तर भारत ही नहीं, अपितु पुण्यभूमि भारतवर्ष के कोने-कोने में समादृत हैं। स्वनिर्मित ब्रजावली भाषा में शास्त्रीय रागों एवं तालों के सन्निवेश के साथ महापुरुष श्रीमन्त शंकरदेव ने अपने बरगीतों में आराध्य प्रभु श्रीकृष्ण के अलौकिक रूप-सौन्दर्य, गुण-माहात्म्य, लीला-क्रीड़ा, आत्म-समर्पण के भाव तथा संसार के प्रति विरक्ति, अपने खेद-पश्चाताप-दीनता के भावों को काव्यात्मक सरसता के साथ मर्मस्पर्शी रूप में प्रस्तुत किया है। अपने आराध्य प्रभु श्रीकृष्ण के लिए गोपाल, हरि, गोविन्द, राम, यादव, नारायण, माधव, मधाइ, मुरारू, केशव, कमललोचन, गोपिनी-प्राण जैसी आख्याओं का प्रयोग करते हुए अपने को उनका किंकर (दास) कहते हुए वे नहीं थकते – "*कृष्ण किंकर, शंकर कह, भज गोविन्दक पाय।*" प्रस्तुत शोधालेख में व्याख्यात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धतियों के माध्यम से विचाराधीन विषय पर समुचित अध्ययन किया गया है।

बीज-शब्द : *महापुरुष श्रीमन्त शंकरदेव, बरगीत, प्रभु श्रीकृष्ण, विविध पहलू।*

प्रस्तावना :

बहुआयामी व्यक्तित्व के अधिकारी महापुरुष श्रीमन्त शंकरदेव एक साथ कवि, समाज-सुधारक, धर्म-प्रवर्तक, शासक, नाटककार-अभिनेता, संगीतज्ञ तो थे ही, पर मूलतः वे भगवान् विष्णु के पूर्णावतार श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे। अपने आराध्य के प्रति सर्वतोरूपेण समर्पित भक्ति-भाव रखते हुए उन्होंने श्रीमद्भागवत् में प्रतिपादित 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' तथा श्रीमद्भगवत् गीता में कथित 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज' को मूल-मंत्र-रूप में ग्रहण किया। विशुद्ध भागवती धर्ममतवाद के रूप में 'एकशरण भागवती वैष्णव धर्म' का प्रवर्तन करते हुए उन्होंने असमीया जन-मानस को वर्ण-जाति-कुल-भेदाभेद से ऊपर उठाकर भक्ति-अध्यात्म के क्षेत्र में समानाधिकार देने का महान प्रयास किया है।

प्रसिद्ध बारहभूयाँ के शिरोमणि एवं प्रशासक के रूप में श्रीमन्त शंकरदेव भौतिक सुख-समृद्धि का जीवन व्यतीत कर सकते थे, परन्तु अपने आराध्य श्रीकृष्ण की भक्ति के प्रचार-प्रसार तथा जन-गण की दुःख-दुर्दशा के कारणों के निराकरण हेतु उन्होंने राजकुमार सिद्धार्थ की भाँति इस भौतिक विलासिता को तृणवत् तुच्छ समझकर त्याग दिया। इसीलिए असमीया के सुप्रसिद्ध साहित्यकार 'रसराज' लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा ने सिद्धार्थ-गौतम बुद्ध के साथ शंकरदेव की तुलना करते हुए लिखा है-

> भारतबर्षत राजपाट आरु सांसरिक सुख संपद बिसर्जन दिओता एक सिद्धार्थ गौतम बुद्धर बाहिरे एने दृष्टांत केइटा आछे ? बुद्धर सैते हे आमार शंकरदेवर तुलना हय।
>
> (बेजबरुवा 2010 : 5)

(यानी, भारतवर्ष में राज-सिंहासन और सांसारिक सुख-सम्पदाओं का त्याग करने वाले सिद्धार्थ गौतम के अलावा ऐसे कितने उदाहरण हैं? बुद्ध के साथ ही हमारे शंकरदेव की तुलना की जा सकती है।)

श्रीमन्त शंकरदेव बारह वर्षों के तीर्थाटन के दौरान विभिन्न धार्मिक मतवादों का परिचय ग्रहण कर, अनेक साधु-संतों के संस्पर्श से आलोकित होकर जब लौटे तब अपने धर्ममत के प्रचार हेतु बरदोवा में ही उन्होंने नामघर-मणिकुट

की स्थापना की। त्रिहूत के जगदीश मिश्र द्वारा अर्पित 'श्रीमद्भागवत्' की टीका 'भावार्थ दीपिका' को ही मूल रूप से आधार मानकर वे इस धर्म के प्रचार-प्रसार हेतु 'कीर्तन-घोषा' के अलग-अलग खण्डों तथा अन्य काव्य-कृतियों की रचना में प्रवृत्त हुए।

महापुरुष श्रीमन्त शंकरदेव का साहित्य वस्तुतः उनके परम आराध्य श्रीकृष्ण के गुणानुकीर्तन का प्रमुख साधन है, उस परब्रह्म के प्रति सबको एकाग्रचित्त होने हेतु आह्वान करने का मुख्य माध्यम है। साहित्य-सर्जना श्रीमन्त शंकरदेव का मूल उद्देश्य नहीं था, वरन् उसके माध्यम से उनके कृष्ण-भक्ति-विह्वल मन के स्वतःस्फूर्त भावों को अंकित करने का कलात्मक साधन भर था। कृष्ण-भक्ति के प्रचार के बहाने ही सही असमीया साहित्य उनके द्वारा विरचित काव्यों, नाटकों, भजन-कीर्तन-संबंधी ग्रन्थों एवं पदों से समृद्ध हो उठा। विशुद्ध असमीया और मिश्रित असमीया (ब्रजावली) में रचित उनके साहित्य को असमीया समाज में जातीय साहित्य की मर्यादा प्राप्त हुई। श्रीमन्त शंकरदेव विरचित काव्य-साहित्य में 'हरिश्चंद्र उपाख्यान', 'रुक्मिणीहरण काव्य', 'बलिछलन', 'अमृत मंथन', 'अजामिल उपाख्यान' और 'कुरुक्षेत्र' उल्लेखनीय हैं। उनके भक्तितत्व-विषयक संग्रहों के अंतर्गत 'भक्तिप्रदीप', 'भक्ति रत्नाकर' (संस्कृत) और 'निमि-नवसिद्ध संवाद' आते हैं। अनूदित कृतियों में भागवत् के प्रथम, द्वितीय, षष्ठ (अजामिल उपाख्यान), अष्टम (बलिछलन, अमृत मंथन), दशम, एकादश और द्वाद्वश स्कंध तथा 'उत्तरकाण्ड रामायण' का उल्लेख किया जाता है। शंकरदेव-कृत अंकीया नाटक हैं – 'पत्नीप्रसाद', 'कालियदमन', 'केलिगोपाल', 'रुक्मिणीहरण', 'पारिजात हरण' और 'रामविजय'। उनके द्वारा रचित गीतों में 'बरगीत', 'भटिमा', 'टोटय' और 'चप्पय' प्रसिद्ध हैं। उनके नाम-प्रसंग-सबंधी कृतियों में 'कीर्तन' और 'गुणमाला' का उल्लेख किया जाता है।

प्रस्तुत अध्ययन में एम.एल.ए. शोध-पद्धति को अपनाते हुए मूलतः शोधपरक, व्याख्यात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धतियों का प्रयोग किया गया है। महापुरुष श्रीमन्त शंकरदेव

के समग्र साहित्य में ही उनके आराध्य श्रीकृष्ण की दिव्य छटा विराजमान है, पर विशेष रूप से उनके द्वारा विरचित बरगीतों में आराध्य श्रीकृष्ण से संबंधित अनेकानेक पहलू पूर्णरूपेण परिलक्षित होते हैं तथा उन्हीं बरगीतों तक यह अध्ययन सीमित रहेगा।

विश्लेषण :

महापुरुष श्रीमन्त शंकरदेव की सर्वश्रेष्ठ कृति 'कीर्तन-घोषा' मानी जाती है, पर उनके द्वारा विरचित 'बरगीत' भी उनके भक्त-हृदय के निचोड़ हैं –– उनकी कृष्ण-भक्ति भावमय कथा के सार-रूप हैं। यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि 'बरगीत' शब्द का प्रयोग श्रीमन्त शंकरदेव ने नहीं किया है, बल्कि महान, उदात्तपूर्ण, निर्मल भक्ति रससिक्त भावों से संपृक्त होने के कारण श्रीमन्त शंकरदेव और उनके परम शिष्य श्री श्री माधवदेव के परवर्ती अनुगामियों ने उनके द्वारा रचित गीतों को 'बरगीत' की आख्या से विभूषित किया। प्रथम बार की तीर्थयात्रा के दौरान 1490 ई॰ के आस-पास बदरिकाश्रम में – 'मन मेरी राम चरणहि लागु' पंक्ति वाले बरगीत-सहित शंकरदेव ने अनेकानेक बरगीतों की रचना की थी। चरित-पोथियों और लोक-परम्परा के अनुसार उन्होंने कुल 'बारह कोड़ी' यानी दौ सौ चालीस बरगीतों की रचना की थी। परन्तु, उन गीतों की पाण्डुलिपि कमला गायन नामक एक भक्त-गायक की झोपड़ी में जल जाने के पश्चात लगभग 'डेढ़ कोड़ी' यानी लगभग तीस-पैंतीस बरगीत ही स्मृति में संचित रहे। स्व-निर्मित ब्रजावली भाषा (असमीया, मैथिली और ब्रज के सम्मिश्रण से बनी कृत्रिम साहित्यिक भाषा) में शास्त्रीय रागों एवं तालों के सन्निवेश के साथ महापुरुष श्रीमन्त शंकरदेव ने अपने बरगीतों में आराध्य प्रभु श्रीकृष्ण के अलौकिक रूप-सौन्दर्य, गुण-माहात्म्य, लीला-क्रीड़ा के साथ ही उनके प्रति आत्म-समर्पण के भाव तथा संसार के प्रति विरक्ति, अपने खेद-पश्चाताप-दीनता के भावों को काव्यात्मक सरसता के साथ मर्मस्पर्शी रूप में अभिव्यक्ति दी है।

महान भारतीय संस्कृति-सभ्यता के आधार-स्तंभों में श्रीकृष्ण सर्वप्रमुख हैं। भोले-भाले गोपालक से लेकर नटखट माखनचोर, असुरों के संहारक, गोपियों के संग रास-रचयिता, प्रशासक-राजनीतिज्ञ-कूटनीतिज्ञ, पाण्डवों के दूत,

गीतोपदेशक-दार्शनिक, महाभारत-युद्ध के महानायक, प्रबल-प्रतापी द्वारकाधीश आदि से सर्वव्यापी-सर्वशक्तिमान परम प्रभु परमेश्वर तक श्रीकृष्ण के अनेक लोक-रक्षक एवं लोक-रंजक रूप सदियों से भारतीय जन-गण को रक्षित, आश्वसित एवं आह्लादित करते आए हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से उन्हें भारतीय इतिहास का सर्वाधिक शक्तिशाली व्यक्ति बताया जाता रहा है, तो आध्यात्मिक दृष्टि से उन्हें परब्रह्म नारायण विष्णु भगवान् के पूर्णावतार के रूप में स्वीकार करके भारतीय जन-गण पीढ़ी-दर-पीढ़ी उनके प्रति असीम श्रद्धा और भक्ति प्रकट करते चले आ रहे हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण का ऐसा भव्य-चरित्र श्रीमन्त शंकरदेव के लिए परम आदर, अप्रतिम भक्ति और दिव्य आकर्षण का केन्द्र रहा। उनके यही परमाराध्य श्रीकृष्ण उनके बरगीतों के मूर्तिमान शृंगार बने। श्रीमन्त शंकरदेव ने अपने आराध्य के लिए विविध आख्याओं का प्रयोग किया है तथा उनके साथ अलग-अलग रूपों में संबंध स्थापित करते हुए मनोगत भावनाओं को भिन्न-भिन्न तरीकों से अभिव्यक्ति प्रदान की है। आराध्य श्रीकृष्ण के रूप-सौन्दर्य का वर्णन, उनके गुण-माहात्म्य का चित्रण, साथ ही उनकी लीलाओं का अंकन भी इन गीतों में हुआ है। आराध्य भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति विनय या प्रार्थना का संयोजन भी इन गीतों में प्राप्त होता है। इनके अलावा कृष्ण-भक्ति के संदर्भ में शंकरदेव द्वारा सांसारिक असारता, खेद-पश्चाताप आदि का भी इनमें चित्रण हुआ है। इन सभी बिन्दुओं पर निम्नांकित शीर्षकों के अंतर्गत आलोकपात किया जा रहा है।

श्रीकृष्ण के लिए प्रयुक्त विविध आख्याएँ

महापुरुष श्रीमन्त शंकरदेव ने अपने आराध्य श्रीकृष्ण का सर्वशक्तिमान तथा विश्व-ब्रह्मांड-नियंता नारायण विष्णु भगवान् के पूर्णावतार के रूप में चित्रण किया है। उन्होंने अपने बरगीतों में अपने आराध्य देव के रूप-ऐश्वर्य, गुण-माहात्म्य, लीला-कार्य आदि को दर्शाने वाले गोपाल, हरि, गोविन्द, यादव, राम, नारायण, दयानिधि, हृषीकेश, माधव, मधाइ, मुरारू, श्रीपति, केशव, कमललोचन, शारंगपाणि, गोपिनी-प्राण आदि विविध आख्याओं का प्रयोग किया है। यहाँ कुछेक उदाहरण द्रष्टव्य हैं-

ध्रु॰ - जय जय यादव जल निधिजा-धव

धाता श्रुतमात्राखिलत्राता।
स्मरणे करय सिद्धि दीने दयानिधि
भुकुति-मुकुति पद-दाता।।

(चौधुरी, संपा. 1984 : 1)

(अर्थात्, यादव-श्रेष्ठ, लक्ष्मीपति, सम्पूर्ण सृष्टि को धारण करने वाले श्रीकृष्ण यानी विष्णु भगवान की जय हो। यह तत्व प्रसिद्ध है कि विष्णु भगवान के पूर्णावतार श्रीकृष्ण अखिल सृष्टि या विश्व के एकमात्र प्राणत्राता हैं। उनके गुण-युक्त नाम के स्मरण करते ही सिद्धि प्राप्त होती है; इसीलिए वे दीन-जनों के लिए दया के समुद्र समान और भक्तों को मुक्ति-पद प्रदान करने वाले हैं।)

मन मेरि राम चरणहि लागु।
तइ देखना अन्तक आगु।।

(उपरिवत् : 13)

(अर्थात्, हे मन ! तू प्रभु श्रीराम के चरणों में लग जा, उन्हीं चरणों में रमा कर। तेरे सामने ही मृत्यु-रूपी अन्त आकर खड़ा है, उसे तू नहीं देख रहा है।)

गोपिनी प्राण काहानु गयो रे गोविन्द।
हामु पापिनी पुनु पेखबो नाहि आर
सोहि वदन अरविन्द।।

(महन्त, संपा. 1988 : 153)

(अर्थात्, हे गोविन्द ! हे गोपीनियों के प्राण ! आप कहाँ चले गए ? हम पापिनी-नारियाँ अरविन्द-सम आपकी काया को अब कभी देख नहीं पाएँगी।)

यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि श्रीमन्त शंकरदेव ने अपने बरगीतों में भगवान् विष्णु के अनेक अवतारों में से अन्यतम प्रमुख अवतार श्रीराम को श्रीकृष्ण का सम-पर्याय मानते हुए उनका उल्लेख किया है। दूसरी बात, उन्होंने अपने इष्टदेव को परब्रह्म के रूप में स्वीकार कर दास्य भक्ति प्रकट करते हुए उनके प्रति अपनी सेवा-भक्ति-अंजलि अर्पित की है।

आराध्य श्रीकृष्ण के साथ संबंध-निरूपण

भक्त अपने भगवान् के साथ अनेक संबंध स्थापित करता है – सेवक-सेव्य का, प्रभु-दास का, प्रियतम-प्रियतमा या स्वामी-पत्नी आदि का। महापुरुष श्रीमन्त शंकरदेव ने भी अपने आराध्य देव श्रीकृष्ण को सर्वशक्तिमान परब्रह्म स्वीकार करते हुए अपने को उनका 'किंकर' (दास) माना है और उनके रूप-ऐश्वर्य एवं उनकी भक्तवत्सलता का गुणानुकीर्तन करते हुए दास्य भक्ति-भावपूर्ण

पदों की सर्जना की है। यहाँ कुछेक उदाहरण दर्शनीय हैं-

कृष्ण किंकर ओहि शंकर भाना।

बिने हरि भकति तरणी नाहि आना।।

(चौधुरी, संपा. 1984 : 9)

[अर्थात्, प्रभु श्रीकृष्ण के किंकर (दास) शंकरदेव कहते हैं कि हरि की भक्ति के बिना मुक्ति प्राप्त नहीं होती।]

जनमे जनमे हामु दासकु दास।

केशव सबहु छोड़हु मोह-पाश।।

शमनक लाइ जीव बड़ डोर।

शंकर कह हरि सेवक तोर।।

(महन्त, संपा.1988 : 133)

(अर्थात्, शंकरदेव कहते हैं कि हे केशव ! मैं जनम-जनम के लिए आपके दास का भी दास बन चुका हूँ। हे त्रिगुणातीत परमपुरुष ! मुझे संसार के सभी मोह-बंधनों से परित्राण दिलाइए। जीव प्रशान्ति के लिए आकुल-व्याकुल होकर इधर-उधर घूम रहा है, बड़ी हलचल मचा रहा है। अंततः शंकरदेव अपने आराध्य हरि से प्रार्थना करते हुए अपने को उनका सेवक कहते हैं।)

श्रीकृष्ण के रूप-सौन्दर्य का वर्णन

विश्व-ब्रह्मांड-सम विस्तृत-व्यापक, अटल जलराशि-सम गंभीर, उज्ज्वल नक्षत्र-सम देदीप्यमान, अपरिसीम, असीम, अनन्त आनन्द के कन्द प्रभु श्रीकृष्ण की विश्वमोहिनी रूप-छटा का वर्णन उनके परम भक्त श्रीमन्त शंकरदेव ने उन्मुक्त हृदय से किया है। महापुरुष श्रीमन्त शंकरदेव द्वारा प्रवर्तित 'एकशरण भागवती वैष्णव धर्म' में हालांकि मूर्ति-उपासना का निषेध है, तथापि भक्ति-भाव अर्पित करने के लिए नाम एवं कीर्तन के साथ ही, मनः-चक्षुओं से हृदय के भीतर प्रभु की भावमूर्ति का प्रत्यक्षीकरण करना आवश्यक माना गया है। अपने परमाराध्य के गरिमामंडित रूप का वर्णन करते हुए शंकरदेव ने अनेक पदों की रचना की है। कुछेक यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे हैं-

ध्रु॰ - मधुर मुरुति मुरारू। मन देखो हृदये हामारु।

रूपे अनंगे संगे तुलना, तनु कोटि सुरुय उजियारु।।

पद॰- मकर कुण्डल गण्ड मण्डित खण्डित चान्दचारुस्मित हासा।

कनक किरीट जड़ित रतना नव नीरूज नयन विकासा।।

------x---------x--------x--------

अरबिन्द निन्दि, पाँव नव पल्लव रतन नूपुर परकाशा।

भकत परम धन, ताहे मजोक मन, शंकर एहु अभिलाषा।।

(चौधुरी, संपा. 1984 : 2)

[अर्थात्, हे मन ! हमारे हृदय में स्थित मधुर रूप वाले मुरारी (मुर नामक दैत्य के नाशक) श्रीकृष्ण को देखो। उनके सुन्दर रूप की तुलना कामदेव से की जाती है। उनका ज्योतिमंडित शरीर करोड़ों उदित सूर्यों के समान प्रतीत होता है। उनके कानों के मकर-कुंडल की झलक से दोनों कनपतियाँ शोभित हैं, उनकी मुस्कान खण्डित चन्द्र के समान सुन्दर है। उनका स्वर्ण-मुकुट रत्नजड़ित है और उनके नयन नव-विकसित कमल के समान मोहनीय हैं। कोमल नए पल्लव जैसे श्रीकृष्ण के पावों की शोभा कमलों को भी पराभूत करती है। उनमें रत्नजड़ित नूपुर भी प्रकाशमान हैं। शंकरदेव की यही अभिलाषा है कि भक्तों के लिए परम धन के समान प्रभु श्रीकृष्ण के चरणों में उनका मन मग्न हो जाए।]

ध्रु॰ - देखु सखि मधुर मुरुति हरि,

धरि अधरे पूरे मुरुरी।

पद - तनु अभिनव घन काला।

उरे लुले कदम्बकु माला।।

पीत अम्बर तड़ित ज्योति।

जले कम्बू गले गजमोति॥

(महन्त, संपा. 1988 : 156)

(अर्थात्, हे सखी, हरि की मनमोहिनी मूरत देख। श्रीकृष्ण अपने अधरों पर मुरली धारण कर तान छेड़ रहे हैं। उनका शरीर नए मेघ के समान श्याम रंग का है। उनके हृदय पर कदम्ब पुष्पों की माला विराजमान है। उनके वस्त्र विद्युत-प्रकाश की भाँति पीले रंग के हैं। उनके गले में शंख-सदृश गजमोतियों का हार चमक रहा है।)

पीताम्बर-परिवेष्टित वंशीधारी श्रीकृष्ण के रूप-सौन्दर्य के ऐसे मनोहारी चित्रण श्रीमन्त शंकरदेव के बरगीतों के प्राण-सदृश हैं। उस मूर्तिमान सौन्दर्य को अपने में पूर्णतः आत्मसात करते हुए उन्होंने ऐसे वर्णन प्रस्तुत किए हैं जिनके पठन से ऐसा प्रतीत होता है मानो संवेदना की सघनता में उनके इष्टदेव की रूपमय छवि उनके हृदयस्थल से निःसृत हो सीधे शब्द-चित्र-रूप में अंकित हो गयी हो। श्रीमन्त शंकरदेव के ये वर्णन

उनकी अप्रतिम एवं अनन्य दास्य-भक्ति से उद्‌बुद्ध अनूठी भाव-मणियाँ हैं जिनके पठन-मात्र से पाठक-गण तथा भक्त-रसिक-गण अपरिमित आनन्द की अनुभूति प्राप्त करते हैं।

श्रीकृष्ण के गुण-माहात्म्य का चित्रण

भक्ति के क्षेत्र में अपने आराध्य के गुण-माहात्म्य का वर्णन विशेष महत्व रखता है क्योंकि ऐसे वर्णनों से भक्त का मन अपने आराध्य के प्रति पूरी तरह आश्वस्त होकर उन्हीं की ओर बढ़ने लगता है। श्रीमन्त शंकरदेव ने अनेक स्थलों पर अपने इष्टदेव श्रीकृष्ण के गुण-माहात्म्य का बहुरूपेण उद्घाटन करते हुए इस संबंध में उनकी भक्तवत्सलता, भवतारण-क्षमता, दयादृष्टि आदि गुणों का बारम्बार उल्लेख किया है। साथ ही, उन्होंने अपने आराध्य के नाम एवं उनकी भक्ति की महत्ता पर भी आलोकपात किया है। यहाँ कुछेक उदाहरण लिए जा सकते हैं-

जग तारक जाकेरि नाम।
देखो जो पुनु आपुन ठाम।।
राम सुहृद सोदर माता।
जान रामेसे अभय दाता।।

(चौधुरी, संपा.1984 : 21)

(अर्थात्, शंकरदेव कहते हैं कि जिनका नाम ही संसार के सभी जनों का उद्धार करने में समर्थ है, वे स्वयं तुम्हारे अपने हृदय में बसे हुए हैं, उनको देखो। वे राम ही सुहृद, भाई, माँ-बाप सब कुछ हैं; वे ही अभयदाता हैं – यह बात समझ लो।)

ध्रु॰ - बोलहु राम नामेसे मुकुति निदाना।
भव वैतरणी-तरणी सुख सरणी
नाहि नाहि नाम समाना।।
पद॰ - नाम पंचानन नादे पलावत
पापदन्ती भयभीत।
बुलिते एक शुनिते शत नितरे
नाम धरम विपरीत।।

(महन्त, संपा. 1988 : 139)

(अर्थात्, शंकरदेव कहते हैं कि मात्र राम के नाम से ही मुक्ति संभव है। भव-सागर में पापियों को अपार कष्ट भोगना पड़ता है। भगवान का नाम नाव द्वारा आसानी से इस भव-सागर को पार करने के सुख-सदृश है; वही एकमात्र साधन है और कुछ भी उसके बराबर का नहीं है। जिस प्रकार सिंह का गर्जन सुनकर हाथी भयभीत होकर भाग जाते हैं, ठीक उसी प्रकार भगवान का नाम सुनने मात्र से मन के सारे पाप, कुसंस्कार

भाग खड़े होते हैं। एक व्यक्ति यदि भगवान के नाम का जाप करे, तो उसे सुनकर सौ व्यक्ति इस संसार के क्लेश से मुक्त हो जाते हैं। नाम का गुण-माहात्म्य विस्मयकारी होता है।)

श्रीकृष्ण का लीला-गायन

महापुरुष श्रीमन्त शंकरदेव ने अपने आराध्यदेव श्रीकृष्ण को परब्रह्म स्वीकार करते हुए उनको भगवान् विष्णु के पूर्णावतार के रूप में ग्रहण किया है तथा श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं का बहुल रूप से वर्णन किया है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि यद्यपि श्रीमन्त शंकरदेव ने कृष्ण-भक्ति के संबंध में मूर्ति-उपासना और कर्म-काण्ड का निषेध किया है, परंतु अपने बरगीतों एवं नाटकों (अंकीया नाट) में उन्होंने श्रीकृष्ण की लीलाओं का विशद चित्रण अवश्य किया है। शंकरदेव के दर्शन-चिंतन में श्रीकृष्ण का निर्गुण-निराकार, सर्वव्यापी-सर्वशक्तिशाली रूप ही बसा हुआ है, परंतु इन लीला-वर्णनों में उनके यही कृष्ण अपने भक्तों के निमित्त सगुण-साकार रूप में अवतरित हो उठते हैं। इन लीला-गायन-विषयक पदों में भगवान् श्रीकृष्ण की बाल-लीलाएँ, वंशी-वादन लीला, गोप-गोपिनी के संग लीलाएँ, मथुरा-गमन आदि समाविष्ट हैं। कुछेक उदाहरण द्रष्टव्य हैं-

नारायण लीला जानब कोइ
सनक सनातन चिन्ति चतुरमुह
अधिकहि विमोहित होइ।।

(उपरिवत् : 129)

(अर्थात्, हे नारायण ! आपकी लीला भला कौन समझ सकता है ? सनक, सनातन प्रभृति सिद्धगण और चारों वेदों के मर्मज्ञ चतुरानन ब्रह्माजी भी आपकी लीला पर विचार करते हुए अधिक विमोहित हो जाते हैं।)

ध्रु॰- हेरहु माई, चललि बिपिने मधाइ।
वेणु बिषाणे निशाने आवत, हरषे हरषे धेनु धाइ।।
पद॰- ओहि जग-मोदन कन्धे दधि ओदन
गोधन आगु बुलाइ।।

(चौधुरी, संपा. 1984 : 16)

(अर्थात्, हे सखी ! ध्यान से देख। मधाइ (श्रीकृष्ण) वृन्दावन जा रहे हैं। उनके द्वारा बजाए गए वेणु और विषाण की सुरीली तान सुनायी पड़ रही है। हर्ष से आवाज़ सुनती हुई गायें भी शायद उनके साथ-साथ दौड़ रही हैं। संसार के सभी जनों को आनन्द प्रदान करने वाले श्रीकृष्ण कन्धे पर दही और भात का मटका लटकाए गायों को पुकारते हुए चल रहे हैं।)

कृष्ण-प्रार्थना का संयोजन

भक्ति-आध्यात्म के क्षेत्र में भक्त-जन अपने इष्टदेव के प्रति प्रार्थना या विनय का प्रस्तुतीकरण करते प्रायः देखे जाते हैं। वस्तुतः प्रार्थना या विनय न केवल भक्ति-भाव की अभिव्यक्ति का मूल आधार होता है, बल्कि अपने आराध्य को कृपा-अनुग्रह के लिए मनाने का प्रमुख हथियार भी होता है। इसमें भक्त अपनी दीनता-हीनता का कातर स्वर में लम्बा-चौड़ा बखान करते हुए अपने आराध्यदेव की महानता-दयालुता एवं भक्त-वत्सलता का गौरवशाली वर्णन करते देखे जाते हैं। महान कृष्णभक्त श्रीमन्त शंकरदेव ने भी अपने बरगीतों में अनेकानेक स्थलों पर ऐसी प्रार्थना का संयोजन किया है। ऐसा ही एक स्थल अवलोकनार्थ प्रस्तुत है-

ध्रु॰- पावे परि हरि करहों कातरि प्राण राखबि मोर।
बिषय बिषधर बिषे जर जर जीवन नारहे मोर।।

X X X

पद॰ – कहतु शंकर ए भव सागर
पार करु हृषिकेश।
तुहो गति मति देहु श्रीपति
तत्व पंथ उपदेश।।

(उपरिवत् : 12-13)

(अर्थात्, शंकरदेव कहते हैं कि हे हरि ! मैं आपके पाँव पकड़कर आपसे विनती करता हूँ कि मेरे प्राणों की रक्षा कीजिए। विषय-वासनाओं के विष से जर्जरित मेरा जीवन अब और शेष न रहेगा। हे हृषिकेश ! इस भव-सागर से मुझे पार दिलाइए। हे श्रीपति ! मेरा मार्गदर्शन कीजिए, मुझे मति प्रदान कीजिए, मूल-तत्व का ज्ञान एवं समुचित उपदेश देकर सही पथ प्रशस्त कीजिए।)

कृष्ण-भक्ति के संदर्भ में सांसारिक असारता, खेद-पश्चाताप आदि का वर्णन

भक्ति-आध्यात्म के क्षेत्र में भक्त अपने चंचल मन को विषय-वासनाओं से हटाकर अपने आराध्य के श्रीचरणों में लगाने हेतु बार-बार कहते हैं। वे सांसारिक असारता, भोग-विलास, भौतिक-सुख आदि की निरर्थकता की बात करते हुए अपने आराध्यदेव की भक्ति के जरिए इस जीवन को सार्थक एवं धन्य करने की बात बारम्बार करते हैं। महापुरुष श्रीमन्त शंकरदेव ने भी अपने बरगीतों में अपने मन की चंचलता पर खेद-पश्चाताप व्यक्त करते हुए अनेक स्थानों पर लिखा है-

नारायण काहे भकति करों तेरा।
मेरि पामर मन माधव घनघन
घातुक पाप न छोड़ा।।

(महन्त, संपा. 1988 : 125)

(अर्थात्, शंकरदेव कहते हैं कि हे नारायण ! मैं आपकी भक्ति कैसे करूँगा ? हे माधव! मेरा पापी मन बराबर औरों की हिंसा करने का पाप-कर्म करना नहीं छोड़ता।)

मन निश्चय पतन काया।
तइ राम भज तेजि माया।।
मन इसव बिषय धान्धा।
केने देखि नेदेखस आन्धा।।
मन सुखे पाय कैछे निन्द।
तइ चेतिया चिन्त गोबिन्द।।
मन जानिया शंकरे कहे।
देख राम बिने गति नहे।।

(चौधुरी, संपा. 1984 : 14)

(अर्थात्, हे मन ! तू यह समझ जा कि इस काया का पतन निश्चित है। इसीलिए तू माया-मोह का त्याग करके राम-नाम का स्मरण कर। हे मन ! यह संसार विषय-वासनाओं का ही धंधा है। तू इसे देखकर भी नासमझी के कारण क्यों अन्धे जैसा बना हुआ है ? तूने इस पार्थिव शरीर के सुख को ही अन्तिम लक्ष्य मान लिया है। यह तेरी कैसी अज्ञानता-भरी नींद है ? तू सचेत होकर गोविन्द का चिन्तन कर। शंकरदेव अपने मन को प्रबोध देते हुए कहते हैं कि हे मन ! सोच-विचारकर देख, राम के बिना किसी प्रकार की सद्गति प्राप्त नहीं हो सकती है।)

अपने परमाराध्य की सर्वशक्तिमयता एवं भक्त-वत्सलता पर पूर्णतः आश्वस्त अनन्य कृष्ण-भक्त श्रीमन्त शंकरदेव ने ऐसे दास्य-भक्तिमय पदों के माध्यम से अपने मन को प्रबोध देते हुए एक ओर जहाँ विषय-वासनाओं तथा भोग-विलास आदि की निःसारता की बात कर इनके त्याग पर बल दिया है, तो दूसरी ओर, मोह-पाश का निवारण कर इस भव-सागर से पार कराने हेतु भगवान् श्रीकृष्ण के समक्ष विनय-प्रार्थना भी निवेदित की है।

निष्कर्ष :

महापुरुष श्रीमन्त शंकरदेव ने अपनी अन्य रचनाओं की ही तरह बरगीतों में भी श्रीकृष्ण के अलौकिक रूप-सौन्दर्य, असीम गुण-माहात्म्य, लोकरंजनकारी लीलाओं, लोकरक्षणकारी कृत्यों का कमोबेश चित्रण-वर्णन किया है। साथ ही, आराध्य श्रीकृष्ण के प्रति विनय अथवा प्रार्थनापरक निवेदन के अलावा कृष्ण-भक्ति के संदर्भ में सांसारिक असारता, माया-मोह की व्यर्थता, मन की मूर्खता एवं अविवेकी आचरणों के

लिए खेद-पश्चाताप की बातों को भी इन गीतों में स्थान दिया है। भक्त श्रीमन्त शंकरदेव के परात्पर-परब्रह्म विष्णु भगवान् के रूप में मूलतः निर्गुण-निराकार श्रीकृष्ण लोकरंजन-रक्षण हेतु अवतार-धारण के संदर्भ में सगुण-साकार से भासित होते हैं। अपने उन्हीं इष्टदेव के साथ मुख्य रूप से प्रभु एवं किंकर का संबंध स्थापित करते हुए श्रीमन्त शंकरदेव ने दास्य-भाव पर आधृत भक्ति-अंजलि अर्पित की है।

वस्तुतः 'बरगीत' महापुरुष श्रीमन्त शंकरदेव के कृष्ण-भक्तिमय हृदय के वे स्वतःस्फूर्त भावोद्गार हैं जो अपनी अपरिसीम लोकप्रियता एवं प्रभविष्णुता के कारण असमीया जन-जीवन तथा समूचे वैष्णव-साहित्य का कंठहार बने हुए हैं। आराध्य श्रीकृष्ण की तरह ही कृष्ण-केन्द्रित ये बरगीत भी काव्यमय, संगीतमय, कलापूर्ण और सर्वाकर्षण से आपूरित हैं जिनमें अवगाहन करते हुए सांसारिक राग-द्वेषों से विमुक्त होकर हम सभी मानव अनायास ही कृष्णमय बन सकते हैं।

ग्रंथ-सूची

चौधुरी, गर्गनारायण, संपा. श्री श्री शंकरदेव आरु श्री श्री माधवदेवर बरगीत. द्वितीय संस्करण. गुवाहाटी : श्रीसुरबाला चौधुरी, 1984.

बेजबरुवा, लक्ष्मीनाथ. महापुरुष श्रीशंकरदेव आरु श्रीमाधवदेव. नवीन संस्करण. गुवाहाटी : लॉयर्स बुक स्टॉल, 2010.

महन्त, बापचन्द्र, संपा. असम के बरगीत. प्रथम संस्करण. जोरहाट :स्व॰ कमलकुमारी बरुवा ट्रस्टफंड, 1988.

सम्पर्क-सूत्र :
सहायक प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, गौहाटी विश्वविद्यालय, असम
ई-मेइल : poojasarma2015@gmail.com
मोबाइल नो॰ : 8638964510

शोध-चिंतन पत्रिका: सहयोगी विद्वानों द्वारा पुनरीक्षित ई शोध पत्रिका
अंक:3; जुलाई-दिसंबर, 2021; पृष्ठ संख्या: 49-67

छायावादी काव्य में नारी का स्थान

✍ डॉ॰ रीतामणि वैश्य

शोध-सार:

छायावाद आधुनिक हिन्दी कविता की उस धारा का नाम है, जो 1918 के आसपास द्विवेदी-युगीन निरस, उपदेशात्मक, इतिवृत्तात्मक और स्थूल आदर्शवादी काव्यधारा के बीच से प्रमुखतः रीतिकालीन काव्य-प्रवृत्ति के विरुद्ध विद्रोह के रूप में प्रवाहित हुई थी। छायावाद कुछ नवीन प्रवृत्तियों के साथ हिन्दी के काव्य जगत में अवतरित होता है। आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति, शृंगारिकता, नारी का चित्रण, सौन्दर्य भावना, रहस्य भावना, वेदना और करुणा की अभिव्यक्ति, मानवातावादी दृष्टिकोण, प्रकृति पर चेतना का आरोप, देशप्रेम की भावना, प्रतीकात्मकता, बिम्बात्मकता एवं चित्रात्मकता, गीति शैली आदि छायावाद की मूल प्रवृत्तियाँ रही हैं। कुछ विद्वान छायावाद को पाश्चात्य रोमांटिसिजम के प्रभाव से विकसित एक काव्यधारा मानते हैं। तो कई इस धारा पर रवीन्द्रनाथ की 'गीतांजलि' का प्रभाव मानते हैं। सामान्य मत है कि यह रीतिकालीन उन्मुक्त प्रेम धारा का विकसित रूप है। जो भी हो, रोमांटिसिजम, 'गीतांजलि' और रीतिमुक्त काव्याधरा-इन सब काव्यधाराओं में नारी का चित्रण मिलता है। पर यह चित्रण बाहरी है,आंतरिक नहीं। इन काव्यों में नारी के अन्तःकरण को टटोलने का प्रयास नहीं हुआ। छायावाद में भी नारी का वर्णन हुआ है,नारी के विविध रूपों का यहाँ चित्रण मिलता है। पर छायावाद में जिस आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति की बात की जाती है,वहाँ नारी मन की अनुभूति की उपेक्षा हुई है। मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत' या 'यशोधरा' में कवि जिस तरह उन चरित्रों के अन्तर्मन में पैठ गए थे,छायावादी काव्यधारा में उस चेतना का अभाव मिलता है।

बीज शब्द : *छायावादी काव्य, रोमांटिसिजम, 'गीतांजलि', रीतिमुक्त काव्यधारा, नारी ।*

प्रस्तावना:

छायावाद(1918-1936) आधुनिक हिन्दी कविता की उस धारा का नाम है,जो 1918 के आसपास द्विवेदी-युगीन(1900-1918) निरस,उपदेशात्मक, इतिवृत्तात्मक और स्थूल आदर्शवादी काव्यधारा के बीच से प्रमुखतः रीतिकालीन काव्य-प्रवृत्ति के विरुद्ध विद्रोह के रूप में प्रवाहित हुई थी। छायावाद कुछ नवीन प्रवृत्तियों के साथ हिन्दी के काव्य जगत में अवतरित होता है। आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति, शृंगारिकता, नारी का चित्रण,सौन्दर्य भावना,रहस्य भावना,वेदना और करुणा की अभिव्यक्ति, मानवातावादी दृष्टिकोण, प्रकृति पर चेतना का आरोप, देश-प्रेम की भावना, प्रतीकात्मकता, बिम्बात्मकता एवं चित्रात्मकता, गीति शैली आदि छायावाद की मूल प्रवृत्तियाँ रही हैं। कुछ विद्वान छायावाद को पाश्चात्य रोमांटिसिजम(1800-1850) के प्रभाव से विकसित एक काव्यधारा मानते हैं। तो कई इस धारा पर रवीन्द्रनाथ ठाकुर (1861-1941) की 'गीतांजलि' (1912) का प्रभाव मानते हैं। सामान्य मत है कि यह रीतिकालीन(1700-1850) उन्मुक्त प्रेम धारा का विकसित रूप है। छायावाद की विविध प्रवृत्तियों में नवीन रूप में नारी की प्रतिष्ठा एक प्रमुख प्रवृत्ति है।

छायावाद आधुनिक काल की एक अन्यतम उपलब्धि है,जो नवीन काव्य-कौशल के साथ साहित्य क्षेत्र में अवतरित होता है। इस कालावधि में नवीन कला और नवीन दृष्टि के साथ सैकड़ों कविताएँ लिखी गयीं। इन रचनाओं को पुरस्कार भी मिला है और इन्हें तिरष्कृत भी होना पड़ा। अनुभूति एवं अभिव्यक्ति- दोनों क्षेत्रों में छायावादी कविता उत्कृष्ट कोटि की कविता है। यहाँ सुक्षातिसूक्ष्म अनुभूतियों की प्रतिष्ठा का प्रयास किया गया है। पुरुषतांत्रिक समाज व्यवस्था के बीच जन्मा और पला हुआ साहित्य पुरुषों पर ही केन्द्रित होता है। आधुनिक काल के पूर्ववर्ती समय तक नारी कविता में उपेक्षित रही। छायावाद में सूक्ष्म अनुभूतियों पर महत्व प्रदान किया गया है। पर नारी के अन्तर्मन की सूक्ष्म अनुभूतियों पर उतना ध्यान नहीं दिया गया, जितना दिया जाना चाहिए था। छायावादी काव्य में नारी को किस दृष्टि से चित्रित किया गया है, उसका अध्ययन आवश्यक है। अतः शोध के लिए प्रस्तुत विषय महत्वपूर्ण है।

विश्लेषण:

छायावाद विशिष्ट कविताओं से समृद्ध एक कालावधि है। जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी'(1935), 'आँसू'(1925), 'झरना' (1918), 'कानन-कुसुम'(1913), 'प्रेम पथिक' (1913), 'लहर'(1933), सुमित्रानंदन पंत(1900-1977) के 'वीणा'(1918), 'ग्रंथि' (1920), 'पल्लव'(1926), 'गुंजन'(1932), 'ग्राम्या'(1940), 'युगांत'(1936), महादेवी वर्मा के 'नीहार'(1930), 'रश्मि'(1932), 'नीरजा'(1934), 'सांध्यगीत'(1935), 'दीपशिखा'(1942), 'प्रथम आयाम'(1984); सूर्यकांत त्रिपाठी निराला के 'परिमल' (1929), 'कुकुरमुत्ता'(1942), 'अर्चना' (1950), 'सांध्य काकली'(1954), 'गीतिका' (1936), 'आराधना'(1953), 'गीत गुंज' (1954), 'अणिमा'(1943), आदि इस युग की प्रमुख उपलब्धियां हैं। एक लंबी परंपरा से गुजरकर हिन्दी कविता इस तरह की उच्च स्तर की कविता तक पहुंची है।

छायावादी काव्य की पृष्ठभूमि

छायावादी काव्य की एक गरिमामय पृष्ठभूमि है। रीतिकाल की रीतिमुक्त धारा के काव्य में जो स्वच्छंदता की भावना मिलती है,वही वस्तुतः छायावादी काव्य का बीज रहा है। छायावाद पर अंग्रेजी रोमांटिसिजम की कविताओं का भी प्रभाव पड़ा। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 'गीतांजलि' ने भी छायावादी कविता को प्रेरित किया। भारतेन्दु और द्विवेदीयुग के काव्य काव्य में भी छायावादी स्वच्छंदता की भावना क्रमशः प्रबल और निर्बल रूप में देखी जाती है।

रीतिकालीन रीतिमुक्त काव्याधारा में नारी का स्थान

छायावादी काव्याधरा का बीज रीतिकालीन स्वच्छंदतावादी काव्यधारा में मिलता है। कवि घनानन्द ने नायिका सुजान के अद्‌भुत रूप-सौन्दर्य का चित्रण किया है। सुजान का गोरा चेहरा चमक रहा है। उसकी आँखें कानों तक स्पर्श करती हैं। जब वह हँसती हुई बोलती है,तो उसके वक्षस्थल पर शोभा के फूल की वर्षा होती है। उसके कपोलों पर चंचल लटें क्रीड़ा कर रही है। उसके कंठ में मोती की शोभायमान है। उसके अंगों से शोभा की तरंगें उठती हैं।ऐसा प्रतीत होता है

कि मानो पृथ्वी पर अभी उसका रंग चू पड़ेगा-

झलकै अति सुंदर आनन गौर,छके दृग राजत काननि छवै ।

हँसि बोलनि में छबि-फूलन की बरषा,उर-ऊपर जाति है ह्वै।

लट लोल कपोल कलोल करै,कलकंठ बनी जलजावलि ह्वै।

अंग अंग तरंग उठै दुति की,परिहै मनो रूप अबै धर च्वै॥

(सिंह 2013:88)

घनानन्द की कविताओं से उनके और सुजान के बिछ शारीरिक संबंध की जानकारी भी मिलती है। कवि कहते हैं कि मिलन के समय बीच में आया हुआ हार भी पहाड़ के समान लगता था,किन्तु अब तो बीच में आकर पहाड़ ही पड़ गए हैं-

घनआनंद मीत सुजान बिना सब ही सुख साज समाज टरे।

तब हार पहार से लागत है अब आनि कै बीच पहार परे॥

(सिंह 2013:92)

इस धारा के प्रमुख कवि हैं घनानन्द। प्रेम पीर के कवि के रूप में ख्यात घनानन्द की कविताओं में विरह की गहन अनुभूतियाँ मिलती हैं। कवि को सुजान से प्रेम था। वही सुजान,जिसे इतिहास में केवल घनानन्द के आश्रयदाता राजा की गणिका के रूप में जाना जाता है। राजा को सुजान के प्रति घनानन्द के प्रेम का ज्ञात होते ही उन्हें देश से निकाल दिया गया। तद्पश्चात कवि ने विरह की अनेक भावगंभीर कविताएँ लिखीं। इन कविताओं में कवि के अपने हृदय की अनुभूतियाँ चित्रित होती हैं। कवि सुजान से कहते हैं कि प्रेम का मार्ग अति सीधा एवं सरल होता है। इस मार्ग में थोड़ी सी भी चतुरता या कुटिलता नहीं होती। मेरे हृदय में केवल तुम्हारे प्रति ही प्रेम है। तुम ने कौन-सी पट्टी पढ़ी है,जिससे तुमने मेरा पूरा मन ले लिया है। पर बदले में मुझे छंटाक भी नहीं दिया-

अति सूधो सानेह को मारग है जहँ नेकु सयानप बाँक नहीं।

तहाँ साँचे चलै तजि आपनपौ झझकै कपटी जे निसाँक नहीं।

घन आनंद प्यारे सुजान सुनौ यहाँ एक ते दूसरो आँक नहीं।

तुम कौन धौं पाटी पढ़े हो मन लेहु,पै देहु,छटाँक नहीं॥

(सिंह 2013:92)

घनानन्द की कविताओं के केंद्र में सुजान रही। उनके प्रेम में स्वच्छंदता है। आपने प्रेम की एक-एक अनुभूतियों को सूजन के प्रति समर्पित किया है। उन कविताओं में सुजान पर आरोप भी लगे,सुजान के प्रति कवि का गहन प्रेम का चित्रण भी हुआ,विरही कवि का हृदय समग्रता से यहाँ उकेरा गया। पर कवि ने सुजान के आत्म पक्ष की उपेक्षा की । यह निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता कि सुजान को घनानन्द से प्रेम नहीं था। कहा जाता है कि देश छोड़ते समय घनानन्द ने सुजान से अपने साथ चलने का आग्रह किया था,जिसे सुजान नकारती है। यही एक कारण से सुजान को सिर्फ गणिका की दृष्टि से देखा जाना उचित नहीं है।सच तो यह है कि न तो घनानन्द ने सुजान के साथ न्याय किया और न ही समीक्षक सुजान के साथ न्याय कर रहे हैं। सुजान का प्रयोजन राजा से था। फिर भी उसने घनानन्द से संबंध बनाया। हमारे विचार से यह संबंध सिर्फ शरीर का नहीं हो सकता । केवल शारीरिक तुष्टि के लिए वह राजा से विपत्ति शायद ही मोल लेती,जो राजा से सिद्ध हो ही रहा था। सुजान के हृदय में भी घनानन्द के प्रति प्रेम का भाव रहा होगा,तभी तो उसने राजा का डर जीतकर घनानन्द से संपर्क बनाए रखा। राजा के आग्रह की उपेक्षाकर सुजान के आग्रह की रक्षा करते हुए गाना गाने के अपराध में घनानन्द को देश निकाला दे दिया गया। अगर सुजान घनानन्द के साथ चल पड़ती,उसकी परिणति कितनी भयानक होती,राज दरबार में रहनेवाली सुजान को इसका ज्ञान जरूर रहा होगा । अगर सुजान के हृदय को टटोला गया होता,आज शायद सुजान की पहचान गणिका से परे होती।

रोमांटिसिजम में नारी का स्थान

छायावाद के संदर्भ में यह माना जाता है कि यह नयी काव्यधारा अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों तथा रवीन्द्रनाथ ठाकुर की काव्यधारा के ढंग की या उससे प्रभावित थी । प्रकृति के चितेरे , कोमलकान्त पदावली के प्रतीक कविवर सुमित्रानंदन पंत ने छायावाद का सीधा संबंध पाश्चात्य साहित्य के रोमांटिसिजम से जोड़ा है। उनका मानना है कि छायावादी कविता रोमांटिसिजम से प्रभावित है।

रोमांटिसिजम अंग्रेजी साहित्य का एक कलात्मक, साहित्यिक, सांगीतिक और बौद्धिक आंदोलन है। यह 18 वीं सदी के

अंतिम समय में यूरोप में शुरू हुआ था। विलियम ब्लेक(1757-1827), एडगर अल्लन पोए (1809-1849), विलियम वोड्स्वर्थ(1770-1850), लॉर्ड बायरन(1788-1824), विक्टर हुगो (1802-1885), जॉन कीट्स(1795-1821), अलेक्जेंडर पुश्किन(1799-1837), रोबर्ट बर्न्स(1759-1796), पेर्सी बायस्शे शेली(1792-1822), सेमुयल टेलर कॉलरीज़(1772-1834) आदि रोमांटिसिजम के प्रमुख कवि हैं । इस धारा की कविताओं में व्यक्ति मन के आवेग एवं अनुभूतियों पर ज़ोर दिया गया है । प्रकृति को मनाना इसकी प्रमुख प्रवृत्ति रही। यहाँ नारी को सौन्दर्य और यौन के प्रतीक के रूप में ग्रहण किया गया है। नारी के सौन्दर्य के बाह्य पक्ष को उकेरना रोमांटिसिजम की कविताओं का एक लक्ष्य रहा है । इसी के चलते इन कविताओं में नारी के आत्मिक सौन्दर्य की उपेक्षा हुई।

विलियम वोड्स्वर्थ की 'सी वाज ए फेंटोम ऑफ दीलाइट'(She was a Phantom of Delight) शीर्षक कविता में प्रेमिका के रूप में नारी का चित्रण मिलता है। कविता में कवि ने अपनी पत्नी का और उसके प्रति अपनी प्रतक्रिया का वर्णन किया है। अपनी पत्नी के साथ के संबंध को कवि ने तीन बिन्दुओं से रेखांकित किया है-जब कवि पहली बार उससे मिले थे,फिर वे एक दूसरे को अच्छी तरह एक दूसरे को जानने लगे और अब वे विवाहित हैं। जब कवि पहली बार मैरी हुटचिनसन से मिले थे,तब वह आनंद की प्रेरणा थी। अपनी पत्नी के साथ कवि की घनिष्ठता थी। आपने पत्नी की स्त्रीसुलभ गुणों का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं कि वह मुक्त भाव से घर का काम करती है। उसके मुक्त विचरण से ऐसा प्रतीत होता है कि वह अब भी कुमारी है। कवि उनके चेहरे पर मीठे वादे देखते हैं। वह जीवन की दैनिक घटनाओं का सामना करने के लिए पर्याप्त मजबूत नहीं है। वह एक साधारण नारी है, जो कवि की प्रेरणा है। उसमें दुख, सुख, आरोप, प्रेम, चुंबन, आँसू और हंसी को संतुलित रखने का गुण है-

I was her upon a nearer view,
A Sprit,yet a Woman too!
Her household motions light and free,
And steps of virgin liberty;
A countenance in which did meet
Sweet records, promises as sweet;

A creature not too bright or good
For human nature's daily food;
For transient sorrows, simple wiles,
Praise,blame,love,kisses,tears and smiles.

(users.telenet.be>gaston.d.haese>words.28.10.2018)

अंग्रेजी साहित्य के जानेमाने कवि रोबर्ट ब्राउनिंग की कविताओं में भी रोमांटिसिजम के कुछ तत्व मिलते हैं। उनकी ' द लस्त राइड तुगेदर'(=The Last Ride Together,1855) शीर्षक कविता में नारी के बाहरी रूप का चित्रण मिलता है।प्रस्तुत कविता वस्तुतः एक नाटकीय आत्मभाषण(=Dramatic Monologue) है,जहां प्रत्याखित प्रेमी कवि अपनी पत्नी एलिजावेथ बरेत ब्राउनिंग के साथ अंतिम सैर करना चाहते हैं। एक ऐसा सैर जो कभी खत्म न हो। कविता का मूल स्वर प्रेम और खोना है (love and lose) है। प्रेमी पत्नी के साथ गुजरे हुए पलों के स्मरण से आनंदित होते हैं । वे पत्नी से एक अंतिम सैर के लिए आग्रह करते हैं । पत्नी के उत्तर को वह जीवन और मृत्यु से तुलना करते हैं । अगर उसने हाँ कर दिया तो उसे मानो नवजीवन मिल जाएगा और अगर ना कर दिया तो वह उनकी मौत से कम नहीं होगा। कविता का भाव दुख और ऊब से भरा है। वह अपनी पत्नी को जहाँ रहे,खुश देखना चाहते हैं । वह कवि के आग्रह को स्वीकार करती है। कवि के अनुसार जीवन में अगर प्रेम नहीं है,तो दुनिया में कुछ नहीं रह जाता है। पत्नी द्वारा उसके प्रत्याख्यान को वे भाग्य का खेल समझते हैं । कवि प्रेयसी के प्रति यौन आकर्षण का अनुभव करते हैं-

Hush! if you saw some western cloud
All billowy-bosomed,over-bowed
By many benedictions-sun's
And moon's and evening star's at once-
And so,you,looking and loving best,
Conscious grew,your passion drew
Cloud,sunset,moonrise,star-shine too,
Down on you, near and yet more near,
Till flesh must fade for heaven was here!-
Thus leant she and lingered-joy and fere!
Thus lay she a moment on my breast

.(http://owlcation.com-28.10.2018)

इसतरह रोमांटिसिजम और रोमांटिक कविताओं से पुष्ट कविताओं में नारी चित्रित हुई है। पुरुष ने नारी को जिस रूप से पाया

है,उसी रूप में उसका वर्णन किया है। रोमांटिसिजम में भी नारी के अन्तर्मन की अनुभूतियों की अभिव्यक्ति नहीं हुई है।

'गीतांजलि' में नारी नारी का स्थान

पहले ही कहा जा चुका है कि छायावादी कविता रवीन्द्रनाथ की 'गीतांजली' से प्रभावित मानी जाती है। कहा जाता है कि कविता की यह धारा बंगाल के कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की काव्यधारा के ढंग की या उससे प्रभावित थी । रवीन्द्रनाथ की 'गीतांजलि' में प्रकृति चित्रण, प्रेम की भावना, मानवतावाद, सौन्दर्य चेतना, रहस्य भावना आदि रोमांटिसिजम की प्रवृत्तियाँ स्पष्ट रूप से मिलती हैं । कवि ने काव्य में बार-बार प्रेम का प्रसंग उठाया है। पर वह प्रेम ईश्वर से है। कवि सबके साथ रहना चाहते हैं। वे अकेले ईश्वर की प्राप्ति नहीं चाहते। कवि ईश्वर से कहते हैं कि तुम जहाँ सबसे मिलते हो,वहाँ मैं भी तुमसे मिलना चाहता हूँ-

सबार पाने येथाय बाहु पसारॉ
सेइखानेतेइ प्रेम जागिबे आमारो।
गोपने प्रेम रय ना घरे,
आलोर मतो छड़िए पड़े-
सबार तुमि आनंदधन, हे प्रिय,
आनंद सेइ आमारो।

(ठाकुर 2002:94)

कवि ईश्वर को चाहते हैं। उनका कहना है कि यही बात मन में रहे कि मैं तुम्हें ही चाहता हूँ। हम दैनंदिन जीवन में तुच्छ विषयों में जुड़ जाते हैं। पर ये सब व्यर्थ है-

चाइ गो आमि तोमारे चाइ
तोमाइ आमि चाइ-
एइ कथाटि सदाय मने
बलते येन पाइ।
आर या-किछु बासनाते
घुरे बेड़ाइ दिने राते
मिथ्या से-सब मिथ्या,ओगो,
तोमाइ आमि चाइ।

(ठाकुर 2002:88)

'गीतांजलि' में इस तरह के भाव संवलित कई पंक्तियाँ मिल जाती हैं । इन पंक्तियों में उनके प्रेम एवं वेदना का मार्मिक चित्रण हुआ है। उनका प्रेम ईश्वर से है। अतः इस स्थिति में नारी का चित्रण या उसके अन्तर्मन को झाँकने का काम यहाँ भी उपलब्ध नहीं हो सका।

भारतेन्दु और द्विवेदी युग की कविता में नारी का स्थान

भारतेन्दु युग(1850-1900) में यथार्थवादी भावभूमि,राष्ट्रीय भावना के

साथ-साथ स्वच्छंदतावादी मनोवृत्ति का स्वरूप निर्धारित हो चुका था।जगमोहन सिंह(1857-1899) की 'प्रेमसंपत्तिलता' की इन पंक्तियों में स्वच्छंदतवादी मनोवृत्ति का स्वरूप स्पष्ट होता है। इन पंक्तियों में कवि ने प्रेयसी के रूप में नारी का चित्रण किया गया है-

अब यों उर आवत है सजनी,
मिलि जाऊँ गरे लगि कै छतियाँ।
मन की करि भाँति अनेकन औ
मिलि कीजिये री रस की बतियाँ।
हम हारि करि कोटि उपाय,
लिखी बहु नेह भरी पातियाँ।
जगमोहन मोहिनी मूरति के बिना
कैसे कटें दुख की रतियाँ॥

(हरदयाल 2012:444)

भारतेंदु युग में अंकुरित सांस्कृतिक चेतना द्विवेदी युग में पूर्ण पुष्पित होती है। श्रीधर पाठक(1860-1928), मैथिलीशरण गुप्त(1886-1964) और आयोद्धासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'(1865-1947) के काव्यों में रीतिकालीन स्वच्छंद धारा की प्रवृत्ति मिलती है। द्विवेदी युग में यथार्थवादी भावभूमि और राष्ट्रीय भावना का विकास तो हुआ, पर स्वच्छंदतवादी मनोवृत्ति का मार्ग यहाँ अवरुद्ध-सा हो गया। छायावादी युग में स्वच्छंदतावादी मनोवृत्ति प्रधान हो गई और यथार्थवादी भावभूमि एवं राष्ट्रीय भावना ने छायावादी काव्य को पुष्ट किया। इसतरह छायावादी कविता कहीं बीच से टपकी हुई वस्तु नहीं है,एक सुनिश्चित आधार पर उसका विकास हुआ है।

छायावादी काव्य में नारी का स्थान

हिन्दी काव्य-जगत में छायावादी कविता उत्कृष्ट कोटि की कविता मानी गई। साहित्य में पहली बार के लिए मनुष्य के अन्तर्मन को टटोला गया। इन कविताओं में नारी का चित्रण हुआ है। छायावादी कविता में नारी विषयक नवीन दृष्टिकोण अपनाया गया है। इस युग में नवीन सांस्कृतिक चेतना की जागृति के कारण नारी संबंधी दृष्टिकोण में बदलाव आया। नारी पुरुषों की प्रेरणा शक्ति बन गई।

नगेंद्र छायावाद की परिवृत्ति के बारे में कहते हैं-

जब-जब स्थूल की प्रभुता असह्य होती गई है, तभी सूक्ष्म ने उसके विरुद्ध क्रांति की है। इस क्रांति और इस विद्रोह के प्रोद्भास रूप से जो गान संसार की आत्मा ने उन्मत्त होकर गाये, वही छायावाद की कविता के प्राण हैं। सारांश

यह है कि स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह ही छायावाद का आधार है। स्थूल शब्द बड़ा व्यापक है,इसकी परिधि में सभी प्रकार के वाह्य रूप-रंग-रूढ़ि आदि सन्निहित हैं। और इसके प्रति विद्रोह का अर्थ है उपयोगितावाद के प्रति भावुकता का विद्रोह, नैतिक रूढ़ियों के प्रति मानसिक स्वातंत्र्य का विद्रोह और काव्य के बंधनों के प्रति स्वच्छंद कल्पना और टेकनीक का विद्रोह। (नगेंद्र1998:1)

नगेंद्र ने इस परिभाषा में छायावाद को सूक्ष्म का विद्रोह माना है।

कवयित्री महादेवी वर्मा छायावाद के नामकरण की उपयुक्तता पर विचार करती हुई कहती है कि छायावाद मनुष्य हृदय की आंतरिक अभिव्यक्ति है-

सृष्टि के बाह्याकार पर इतना लिखा जा चुका था कि मनुष्य का हृदय अभिव्यक्ति के लिए रो उठा। स्वच्छंद छंद में चित्रित उन मानव अनुभूतियों का नाम छाया उपयुक्त ही था और मुझे तो आज भी उपयुक्त ही लगता है। (शर्मा:490)

छायावाद की इन परिभाषाओं से एक एक बात स्पष्ट है कि छायावाद मनुष्य हृदय सुक्षातिसूक्ष्म अनुभूतियों की अभिव्यक्ति का मंच है। सवाल यह है कि इस मनुष्य हृदय में नारी को भी सम्मिलित किया गया है या नहीं। प्रस्तुत अध्ययन में छायावाद के प्रमुख रचनाकारों की रचनाओं में नारी

डॉ. गोपाल राय का कहना है-

नारी के शारीरिक सौन्दर्य के अनेक मोहक चित्र प्रणय की कविताओं में बिखरे हुए मिलते हैं। यह सौंदर्य प्रत्यक्ष रूप से नायिका के रूप-वर्णन में भी दिखाई देता है,जैसे प्रसाद-कृत 'आंसू' तथा 'कामायनी' में प्रस्तुत किया गया नायिका का सौन्दर्य या पंत-कृत 'भावी पत्नी के प्रति' में व्यक्त नायिका का सौंदर्य और परोक्ष तथा सांकेतिक रूप में भी लक्षित होता है निराला की 'जूही की कली' में। (नगेंद्र 2012:529)

छायावादी कविता का शृंगार और सौन्दर्य नारी से संबन्धित है। छायावादी कवियों ने प्रकृति को नारी के रूप में चित्रित किया है। डॉ॰ किश्वर सुल्ताना छायावाद में नारी के संबंध में कहते हैं-

उसे(नारी को) सौन्दर्य और शक्ति की देवी मानकर युगों से आच्छादित संकीर्ण पदों को उखाड़ फेंका। रीतिकालीन " लहलहाती तन तरुनई" और द्विवेदीकालीन "देवी" को छोड़ अब

> कवियों ने नारी को नवीन दृष्टिकोण से देखा। वह इस पार्थिव जगत की स्थूल नारी न रहकर अब भाव-जगत का सुकुमार "सौन्दर्य" हो गयी।...कवि ने कुत्सित लिंगभेद को समाप्त कर उसे "देवी! माँ! सहचरी! प्राण" रूप में उपस्थित किया।...इस प्रकार छायावाद ने ही नारी-भावना का चरमोत्थान किया और उसे इतना ऊंचा और गौरव-सम्पन्न स्थान दिया ।(सुल्ताना 1985:86)

छायावाद की इन परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि छायावाद मनुष्य हृदय की सुक्षातिसूक्ष्म अनुभूतियों की अभिव्यक्ति का मंच है। छायावाद में नारी के विविध रूपों में चित्रित हुआ है। सवाल यह है कि इस 'मनुष्य' के अंतर्गत नारी को रखा गया है या नहीं। प्रस्तुत अध्ययन में छायावाद के प्रमुख रचनाकारों की रचनाओं में नारी को किस हद तक चित्रित किया गया है,उस पर समीक्षा की गयी है।

प्रसाद की कविताओं में नारी स्थान

निस्संदेह छायावादी कविताओं में नारी के सौन्दर्य का चित्रण मिलता है। इन कविताओं में वस्तुतः नारी के प्रति स्थित प्राचीन भोगवादी दृष्टि ही मिलती है। नारी अपूर्व सुंदरता की अधिकारिणी है। इसीलिए उसके अंगों-उपांगों का सुंदरतम वर्णन किया गया। प्रकृति के मानवीकरण के रूप में नारी का व्यापक प्रयोग हुआ। 'कामायनी' में भी प्रकृति के अद्भुत सौन्दर्य का वर्णन मिलता है। यहाँ प्रकृति की सुंदरता के प्रतिमान के रूप में नारी का प्रयोग हुआ,पर नारी की प्रतिष्ठा का सवाल यहाँ सवाल बनाकर ही खड़ा रहा। छायावादी काव्य में नारी की प्रतिष्ठा की मांग का एक प्रमुख आधार है 'कामायानी' है। इस महाकाव्य में प्रसाद ने नारी को श्रद्धा का पर्याय माना है। आपने नारी को आदर्श के प्रतीक के रूप में प्रतिष्ठा की है-

> नारी! तुम केवल श्रद्धा हो विश्वास रजत नग पगतल में;
> पीयूस-स्रोत-सी बहा करो जीवन के सुंदर समतल में।

(प्रसाद 2001:46)

इन पंक्तियों में मर्यादा के नाम पर नारी के पैर जकड़े गए हैं। नायिका श्रद्धा को गर्भावस्था में छोडकर छोकर जानेवाले साथी मनु को मन का प्रतीक मानकर पुरुष को किसी भी तरह के चंचल हरकत करने की मानो इजाजत दे दी गयी हो।

प्रसाद को असमय पत्नी वियोग सहना पड़ा था। उनकी कविताओं में विरह का

अपना पक्ष मिलता है। उनके नाटकों के पात्रों में नारी को विविध रूपों में प्रतिष्ठा दी गयी है। पर जिस सूक्ष्म अनुभूतियों की बात छायावादी कविताओं को लेकर की जाती है,वहाँ नारी मन उपेक्षित रहा।

निराला की कविताओं में नारी का स्थान

निराला ने काव्य में नारी को विविध रूपों में उतारा है। आपकी 'संध्या सुंदरी' कविता में कवि ने मानवीकरण आलंकार के सहारे संध्या की सुंदरता का वर्णन किया है-

दिवसावसान का समय,
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्या-सुंदरी पारी-सी
धीरे धीरे धीरे।
तिमिरांचल में चंचलता का नहीं कहीं
आभास,
मधुर-मधुर हैं दोनों उसके अधर-
किन्तु,जरा गंभीर,-नहीं है उसमें हास-
विलास।
हँसता है केवल तारा एक
गूँथा हुआ उन घुँघराले काले-काले बालों
से,
हृदयराज्य की रानी का वह करता है
अभिषेक।

(सिंह 2013:63)

निराला की विधवा कविता में कवि ने नारी के वैधव्य जीवन का कारुणिक एवं सहानुभूतिपूर्ण वर्णन किया है-

वह इष्टदेव के मंदिर की पूजा-सी
वह दीप-शिखा-सी शांत,भाव से लीन
वह क्रूर-काल-तांडव की स्मृति-रेखा-सी,
वह टूटे तरु की छूती-लता-सी दीन
दलित भारत का ही विधवा है।

(सिंह 2013:66)

निराला की 'राम की शक्ति पूजा' कविता में कवि ने एक नारी (सीता) को केंद्र में रखकर कथा को आगे बढ़ाया है। कविता में सीता राम की प्रेरणा शक्ति है,दुर्गा शक्ति की अधिष्ठात्री देवी है। पर कथा का लक्ष्य पुरुष (राम) की शक्ति आहरण की प्रक्रिया को समाप्त करती है। राम के मन में सीता के प्रथम दर्शन का दृश्य छा जाता है। पर अपहृता सीता मन के विरह,प्रेम,विद्रोह,अहं अभिमान आदि संभावित प्रसंगों की उपेक्षा हुई है-

ऐसे क्षण अंधकार घन में जैसे विद्युत्
जागी पृथ्वी-तनया-कुमारिका-छवि
अच्युत
देखते हुए निष्पलक,याद आया उपवन
विदेह का,-प्रथम स्नेह का लतान्तराल
मिलन

नयनों का-नयनों से गोपन-प्रिय
संभाषण-
पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान-
पाटन,-
कांपते हुए किसलय-झरते पराग
समुदाय,-
गाते खग नव-जीवन-परिचय-तरु मलय-
वलय,
ज्योति:-प्रपात स्वर्गीय,-ज्यात छवि प्रथम
स्वीय,-
जानकी नयन कमनीय प्रथम कंपन
तुरीय।

(सिंह 2013:70)

निराला ने 'सरोज स्मृति' कविता में पुत्री सरोज को स्नेह पुष्प अर्पित करते हैं। वे पिता के रूप में अपनी असहाय दशा का कारुणिक चित्रा खींचते हैं-

धन्ये,मैं पिता निरर्थक था,
कुछ भी तेरे हित न कर सका!
जाना तो अर्थागमोपाय,
पर रहा सदा संकुचित-काय
लाखकर अनर्थ आर्थिक पाठ पर
हारता रहा मैं स्वार्थ-समर।

(सिंह 2013: 78)

निराला ने 'तोड़ती पत्थर' कविता में रास्ते में पत्थर तोड़ती एक औरत का कारुणिक वर्णन किया है-

वह तोड़ती पत्थर;
देखा मैंने उसे इलाहाबाद के पथ पर-
वह तोड़ती पत्थर।
कोई न छायादार
पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार;
श्याम तन, भर बंधा यौवन,
नत नयन, प्रिय-कर्म-रत मन,
गुरु हथौड़ा हाथ,
करती बार-बार प्रहार:-
सामने तरु-मालिका अट्टालिका, प्राकार।

(http://www.hindi-kavita.com/HindiPoetrySuryakant Tripathi Nirala.php#Nirala.21.7.2017)

इस कविता में आगे कवि ने औरत के मन को भापने का एक प्रयास किया है। औरत कुछ सोचती है, फिर काम में लग जाती है-

देखते देखा मुझे तो एक बार
उस भवन की ओर देखा, छिन्नतार;
देखकर कोई नहीं,
देखा मुझे उस दृष्टि से
जो मार खा रोई नहीं,
सजा सहज सितार,

सुनी मैंने वह नहीं जो थी सुनी झंकार।

एक क्षण के बाद वह काँपी सुघर,

ढुलक माथे से गिरे सीकर,

लीन होते कर्म में फिर ज्यों कहा-

"मैं तोड़ती पत्थर।"

(http://www.hindi-kavita.com/HindiPoetrySuryakant Tripathi Nirala.php#Nirala.21.7.2017

पंत की कविताओं में नारी चित्रण

कविवर सुमित्रानंदन पंत की कई कविताओं में नारी का वर्णन मिलता है। 'ग्राम्या' में संकलित उनकी 'स्त्री' कविता में मित्रानंदन पंत ने नारी में स्वर्ग और नरक का वास माना है-

यदि स्वर्ग कहीं है पृथ्वी पर, तो वह

नारी उर के भीतर,

दल पर दल खोल हृदय के अस्तर

जब बिठलाती प्रसन्न होकर

वह अमर प्रणय के शतदल पर!

.....

यदि कहीं नरक है इस भू पर, तो वह भी

नारी के अन्दर,

वासनावर्त में डाल प्रखर

वह अंध गर्त में चिर दुस्तर

नर को ढकेल सकती सत्वर!

(Kavitakosh.org/kk/ -/- sumitranandan Pant.27.7.2017)

'ग्राम्या' की 'मज़दूरनी के प्रति' कविता भी नारी पर केन्द्रित है। यहाँ कवि ने नारी को मानवी के रूप में प्रतिष्ठा की है-

कुल वधू सुलभ संरक्षणता से हो वंचित,

निज बंधन खो, तुमने स्वतंत्रता की

अर्जित।

स्त्री नहीं, बन गई आज मानवी तुम

निश्चित,

जिसके प्रिय अंगो को छू अनिलातप

पुलकित!

(Kavitakosh.org/kk/ -/- Sumitranandan Pant.27.7.2017)

पंत की 'नारी' कविता में कवि के मन में नारी के प्रति सहानुभूति मिलती है। नारी की प्रतिष्ठा का प्रयास यहाँ मिलता है। कवि नारी को नर की लालस प्रतिमा कहते हैं। वह युगों से वंदिनी है। वह पशु सी जीवित है। उसे सदाचार की सीमा में जकड़ा गया है। अंत में कवि नारी को पुरुष के साथ स्थापित कर उसे मानव का दर्जा देने में विश्वास रखते हैं-

योनि नहीं है रे नारी, वह भी मानवी

प्रतिष्ठित,

उसे पूर्ण स्वाधीन करो, वह रहे न नर पर

अवसित।

द्वन्द्व क्षुधित मानव समाज पशु जग से भी

है गर्हित,

नर नारी के सहज स्नेह से सूक्ष्म वृत्ति हों

विकसित।

(Kavitakosh.org/kk/ -/- Sumitranandan Pant.27.7.2017)

पंत ने नारी से संबन्धित कई कविताएं लिखीं,विविध रूपों में नारी को चित्रित किया। उनकी 'पर्वत-प्रदेश में पावस' कविता में बाल्यकाल की मित्र का वर्णन करते हैं-

धँस गये धरा में समय शाल!

उठ रहा धुआँ,जल गया ताल!

-यों जलद यान में विचर-विचर

था इंद्रा खेलता इंद्रजाल!

(वह सरला उस गिरि को कहती थी बादल-घर)

इस तरह मेरे चितेरे हृदय की

बाह्य प्रकृति बनी चमत्कृत चित्र थी;

सरल शैशव की सुखद सुधि-सी वही

बालिका मेरी मनोरम मित्र थी।

(सिंह2013:91)

महादेवी की कविताओं में नारी का स्थान

छायावाद की कवयित्री महादेवी वर्मा की कविताओं में नारी हृदय की वेदना का प्रस्फुटन मिलता है। 'क्या नई मेरी कहानी' में वे अपनी करुण कहानी कहती हैं-

क्या नई मेरी कहानी !

विश्व का कण-कण सुनाता

प्रिय वही गाथा पुरानी !

सजल बादल का हृदय-कण,

चू पड़ा जब पिघल भू पर,

पी गया उसको अपरिचित

तृषित दरका पंक का उर;

मिट गई उससे तड़ित सी

हाय! वारिद की निशानी !

करुण यह मेरी कहानी !

(http://www.hindi-kavita.com/HindiPoetryMahadeviVerma.php#Mahadevi6.21.7.2017)

वे 'मैं नीर भारी दुख की बदली' कविता में स्वयं को बदली से तुलना करती हैं-

विस्तृत नभ का कोई कोना,

मेरा न कभी अपना होना,

परिचय इतना इतिहास यही,

उमड़ी कल थी मिट आज चली।

(http://www.hindi-kavita.com/HindiPoetryMahadeviVerma.php#Mahadevi6-----21.7.2017)

महादेवी को पारिवारिक जीवन का सुख नहीं मिला। आपका विवाह तो हुआ था,पर वह ज्यादा दिनों तक नहीं चला। इससी से उनकी कविताओं में विरह की गहराई मिलती है। वे अज्ञात प्रियतम की खोज में बेचैन दिखाई पड़ती है।

हमारे विचार से महादेवी के अज्ञात प्रियतम का संधान का विषय सच्चाई के कठघरे में खड़ी नहीं उतर सकता । दूसरी बात यह है कि वे अपनी कविताओं से नारी मन की अनुभूतियों को मुक्त कर सकती थीं,जो उन्होंने नहीं कीं। इसका कारण तदयुगीन समाज हो सकता है। आज की स्थिति में कोई परित्यक्ता नारी अपनी विरह वेदना की तीव्रता को खुले आम कह भी सकती है। पर जिस जमाने में महादेवी ने कविता लिखी,उस समय वैयक्तिक बातों को सामूहिक कर पाना मुश्किल था। कारण चाहे जो भी हो,महादेवी के अज्ञात प्रियतम के संधान के पीछे उनकी वैयक्तिक आकांक्षा ही थी,उसमें कोई संदेह नहीं होना चाहिए। आलंबन प्रेम की अनिवार्य शर्त है। उसके अभाव में प्रेम ,फिर विरह की अनुभूति कैसे संभव हो सकता है। यह बात पंत पर भी लागू होती है। मौन निमंत्रण में कवि किसी से मौन निमंत्रण का अनुभव करता है-

स्तब्ध ज्योत्स्ना में जब संसार

चकित रहता शिशु-सा नादान,

विश्व के पलकों पर सुकुमार

विचरते हैं जन स्वप्न अजान;

न जाने,नक्षत्रों से कौन

निमंत्रण देता मुझको मौन!

(सिंह 2013 :92)

मैथिलीशरण गुप्त की कविताओं में नारी स्थान

छायावादी काव्यधारा की उपेक्षा मैथिलीशरण गुप्त की कविताओं में नारी की प्रतिष्ठा मिलती है। गुप्त की कविताओं में नारी नारी होने के साथ-साथ मनुष्य है। साकेत(1931) के नवां सर्ग में विरह विदग्धा उर्मिला अपनी कारुणिक दशा का बयान करती है-

विरह में आ जा तू ही मान!

स्वजनि,रोता है मेरा गान।

यही आज है इस मन में,

छोड़ धाम-धन जा कर मैं भी रहूँ उसी वन में।

(गुप्त1988:168)

फिर-

बीच बीच में उन्हें देख लूँ मैं झुरमुट की ओट,

जब वे निकाल जाएँ तब लेटूँ उसी धूल में लोट।

(गुप्त1988:168)

उसी तरह 'यशोधरा' (1932) में यशोधरा अपने पति के बिन कहे घर छोड़ जाने की बात पर सवाल खड़ा करती है-

मुझको बहुत उन्होंने माना,

फिर भी क्या पूरा पहचाना?

मैंने मुख्य उसी को जाना,

जो वे मन में लाते।

सखी,वे मुझसे कहकर जाते।

(गुप्त 1979:35)

गुप्त की कविताओं में नारी मन की विविध दशाओं की मार्मिक अभिव्यक्ति मिलती है।

निष्कर्ष:

द्विवेदी युग में भारतेन्दु युग के सांस्कृतिक जागरण का प्रमुख स्वर सुधारवादी हो गया। हिन्दी काव्य-संसार में समाज की तरह ही नारी की उपेक्षा की गई। रीतिकालीन रीतिमुक्त काव्यधारा में नारी का स्वच्छंद रूप से चित्रण हुआ है। इससे पहले आदिकाल विविध धार्मिक मान्यताओं एवं राजनीतिक प्रशस्तियों के नारी उपेक्षित हो गई। भक्तिकाल की भक्ति की प्रबल-धारा के सामने नारी टिक नहीं पायी थी। रीतिकालीन रीतिबद्ध और रीतिमुक्त काव्य में नारी का चित्रण तो बखूबी हुआ, पर वह भी पुरुषों की मानसिक तृप्ति के उद्देश्य से। इसीलिए वहाँ भी नारी भोग और सौन्दर्य का साधन बन कर रह गई। घनानन्द ने पहली बार साहित्य में नारी का स्वार्थरहित चित्रण किया। विरही होते हुए भी प्रेमिका सुजान की गंभीर अभिव्यक्ति दी। परवर्ती समय में हिन्दी के भारतेन्दु युग में नारी फिर से काव्य के पन्ने से उठ-सी गई। द्वेवेदी युग में मैथिलीशरण गुप्त ने साकेत और यशोधरा के माध्यम से नारी की सही प्रतिष्ठा की। छायावाद में नारी का बहुल वर्णन हुआ। पर वहाँ भी साधन के रूप में नारी का उपयोग किया गया, नारी को भारतीय परंपरा की दुहाई देकर फिर से जिम्मेदारियों की जंजीरों से जकड़ा गया। कुल

मिलकर कहा जा सकता है कि छायावाद पर पाश्चत्य रोमांटिसिजम का आंशिक प्रभाव रहा। रवीद्रनाथ की 'गीतांजलि' से छायावादी कविता को प्रोत्साहन मिला है। छायावाद का मूल बीज रीतिकाल की रीतिमुक्त काव्यधारा में मिलता है। छायावादी काव्य में वैयक्तिकता की अभिव्यक्ति हुई। अपने निजी जीवन के प्रसंगों से कवि अनेक क्षेत्रों में बचते नजर आये। छायावादी काव्य में नारी का चित्रण मिलता है। नारी यहाँ संगिनी,सहचरी, प्रेमिका आदि के रूप में चित्रित की गयी। छायावादी काव्य में नारी के बाह्य सौन्दर्य की प्रतिष्ठा हुई है। नारी के अन्तर्मन को तलाशने का कोई ठोस प्रयास यहाँ नहीं मिलता। महादेवी की कविताओं में नारी मन की आंशिक अनुभूतियाँ मिलती हैं। उन्होंने जो अज्ञात प्रियतम का संधान किया है, वह विश्वसनीय नहीं हो सकता। द्विवेदी युग में जिस तरह उर्मिला,यशोधरा आदि चरित्रों के जरिए नारी मन को उकेरने का प्रयास हुआ,वह छायावाद में नहीं मिलता।

ग्रंथ-सूची :

अमरनाथ. हिन्दी आलोचना का पारिभाषिक शब्दावली. प्रथम. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2009.

गुप्त,मैथिलीशरण.यशोधरा.झाँसी:साकेत प्रकाशन,1979.

--.साकेत.झाँसी:साहित्य-सदन,1988.

ठाकुर,रवीन्द्रनाथ.गीतांजलि.सर्वाधुनिक संस्कारण.कोलकाता:पुनश्च, 2002.

तिवारी,अशोक और गंगासहाय 'प्रेमी'.हिन्दी साहित्य का इतिहास. आगरा:हरीश विश्वविद्यालय प्रकाशन.

नगेंद्र.सुमित्रानंदन पंत.प्रथम.नई दिल्ली:नेशनल पब्लिशिंग हाउस,1998.

--.हिन्दी साहित्य का इतिहास.दिल्ली:मयूर पेपरबैक्स, 2012.

प्रसाद,जयशंकर.कामायनी.प्रथम.वाराणसी:विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2012.

वर्मा,धीरेंद्र,संपा(प्रधान). हिन्दी साहित्य कोश. भाग 1. वाराणसी: ज्ञानमंडल लिमिटेड, 2013.

वर्मा,धीरेंद्र,संपा(प्रधान). हिन्दी साहित्य कोश. भाग 2. वाराणसी: ज्ञानमंडल लिमिटेड, 2013.

शर्मा,शिवकुमार.हिन्दी साहित्य:युग और प्रवृत्तियाँ.नई दिल्ली:अशोक प्रकाशन.

सिंह,विजयपाल.छायावाद के प्रतिनिधि कवि.दसवाँ.वाराणसी: विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2013.

सिंह,विजयपाल.रीतिकाव्य-संग्रह.दसवाँ.इलाहाबाद: लोकभरती प्रकाशन, 2013.

सुल्ताना,किश्वर.पंत काव्य में कला शिल्प और सौन्दर्य.प्रथम.इलाहाबाद:राजीव प्रकाशन,1985.

हरदयाल और नगेंद्र.हिन्दी साहित्य का इतिहास.नई दिल्ली:नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 2012.

संपर्क-सूत्र:
सहयोगी अध्यापिका एवं विभागाध्यक्षा
हिन्दी विभाग,गौहाटी विश्वविद्यालय
मोबाइल संख्या:9435116133
E-mail: rita1@gauhati.ac.in

शोध-चिंतन पत्रिका: सहयोगी विद्वानों द्वारा पुनरीक्षित ई शोध पत्रिका
अंक:3; जुलाई-दिसंबर, 2021; पृष्ठ संख्या: 68-77

'मरूद्यान' उपन्यास का संवेदना पक्ष : एक समीक्षात्मक अध्ययन

✍ संजीव मंडल

शोध-सार:

मरूद्यान डॉ. भूपेंद्रनारायण भट्टाचार्य द्वारा रचित चेतना प्रवाह शैली में लिखा गया एक विचारोत्तेजक असमीया उपन्यास है। इसमें उपन्यासकार ने नायक शीलादित्य के माध्यम से कदाचित अपने ही विचारों को पेश किया है जिसे एक आधुनिक युगीन मानस की उपज कह सकते हैं। पत्नी के स्वतंत्र अस्तित्व को मान्यता देने की चरम सीमा यह है कि वह पत्नी के उसके साथ बेवफाई करने को भी न्यायोचित मानता है क्योंकि पत्नी को अपने जीवन के सभी फैसले स्वतंत्र रूप से लेने का हक है। शीलादित्य की नौकरी जा चुकी है और वह अब केवल चित्रकारी करने के अलावा कुछ नहीं करता। उसका बच्चा मर चुका है और पत्नी दूसरे पुरुष के साथ जा चुकी है। इस उपन्यास में घरेलू हिंसा, व्यापारियों की मुनाफाखोरी, मूल्यवृद्धि, घूसखोरी, स्वार्थपूर्ण राजनीति आदि सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं का भी चित्रण किया गया है। इस उपन्यास में लेखक का कलाकार सुलभ मन मुखर हुआ है। यह उपन्यास हमें जीने की प्रेरणा भी देता है। इस उपन्यास के नायक का चरित्र हमें पहले-पहल चौंका भी सकता है। पर एक कलाकार के लिए ऐसी मानसिकता कोई अनोखी बात नहीं है। इस उपन्यास की पृष्ठभूमि कोलकाता शहर है।

बीज शब्द: *असमीया साहित्य, उपन्यास।*

प्रस्तावना:

असमीया साहित्यकार डॉ. भूपेंद्रनारायण भट्टाचार्य ने 'मरूद्यान' उपन्यास की रचना की है। इनका जन्म 5 अगस्त 1952 ई. में हुआ था। गौहाटी विश्वविद्यालय से इन्होंने वनस्पति विज्ञान में पीएच.डी. की है। गुवाहाटी के आर्य विद्यापीठ कॉलेज के वनस्पति विज्ञान विभाग के वे विभागाध्यक्ष रह चुके हैं। भट्टाचार्य एक विशिष्ट चित्रकार हैं। अपनी कहानियों में उन्होंने चित्रकला और मनोविज्ञान का सफल प्रयोग किया है। 'काउरी, काउरी आरु काउरी' (कौवा, कौवा और कौवा) कहानी के लिए अखिल भारतीय स्तर की कहानी के लिए

दिया जाने वाला श्रेष्ठ पुरस्कार 'कथा पुरस्कार' असमीया भाषा के लिए इन्हीं को पहली बार 1991 ई. में दिया गया था। 'असम साहित्य सभा' ने 1980 ई. में इन्हें सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार पुरस्कार प्रदान किया। दलाल (1983), कोरस (1985), घोंरापाक (1992), गरम बताह (गरम हवा) (1997), आठाइसटा चुटि गल्प (अट्ठाइस छोटी कहानियाँ) (2006), ब्रह्मपुत्रर बुकुत सूर्यास्त (ब्रह्मपुत्र के सीने में सूर्यास्त) (2003), कॉफी हाउसत केइघण्टामान (कॉफी हाउस में कुछ घण्टे) (2008), पानबजारत एटा बाघ (पानबजार में एक बाघ) (2007), जीवनर गद्य कबिता (जीवन की गद्य कविता) (2007), गुवाहाटीया गल्प गुच्छ (गुवाहाटी का गल्प गुच्छ) (2015) - ये उनके कहानी-संकलन हैं। दुर्जन (1980), घरुवा परिबेशत नासिरुद्दीन शाह (घरेलू परिवेश में नासिरुद्दिन शाह) (1987), नरककुण्डत केइजनमान अतिथि (नरककुण्ड में कुछ अतिथि) (1987), मरूद्यान (1991), सागर तीरत आमि (सागर किनारे हम) (1994), प्रेम, छबि आरु कबिता (प्रेम, चित्र और कविता) (1995), अनुभव (2000), बालिघर (बालूघर) (2003), कांता (2007), मन (2007), मरीचिका, मरीचिका और मरीचिका (मरीचिका, मरीचिका और मरीचिका), बुढ़ादियार पारे पारे (बुढ़ादिया के किनारे-किनारे) - ये उनके उपन्यास हैं। इनका 'अनुभव' नामक उपन्यास हिंदी में अनूदित हुआ है। इनकी बहुत-सी कहानियाँ अंग्रेजी, तेलगू, मलयालम, बंगाली और हिंदी में अनूदित हुई हैं।

'मरूद्यान' उपन्यास में कलकत्ते को पृष्ठभूमि के रूप में चुना गया है। कथा का काल है 1989 ई.। शीलादित्य नामक एक कवि-चित्रकार के निस्संग जीवन को इसमें चित्रित किया गया है। शीलादित्य इस निस्संगता से परेशान नहीं है, बल्कि इस निस्संगता से वह जीवन में कुछ करने की प्रेरणा पाता है। उपन्यास चेतना प्रवाह शैली में लिखा गया है।

इस शोधालेख में हमने ग्रंथ-सूची और उद्धरण MLA (Modern Language Association) पद्धति के नवीनतम संस्करण के नियमों के अनुसार रखे हैं।

विश्लेषण :

आगे हमने इस उपन्यास का अलग-अलग दृष्टिकोणों से विश्लेषण करने का प्रयास किया है।

उपन्यास की कथावस्तु :

एलवर्ट हॉल के कैफ़े में बैठा हुआ शीलादित्य अपने अतीत की घटना का स्मरण करता है। स्मरण करता है मेखला नामक लड़की के साथ प्रेम का। उसकी पत्नी थी प्रणामिका। उनका प्रेम विवाह हुआ था। वह प्रणामिका के साथ के प्रेम का स्मरण भी करता है। वह अब भूलक्कड़ हो गया है। कहीं की चीज कहीं रख कर भूल जाता है। फिर उस चीज को खोजते हुए परेशान होता है। ये सारी बातें भी वह कैफ़े में बैठे-बैठे ही सोचता जाता है। कैफ़े में शीलादित्य सिद्धार्थ बसु के इंतजार में बैठा है। वह अपना नया कविता-संकलन उसे पढ़ाना चाहता है। बसु उसका सबसे प्रिय व्यक्ति है जो खुद भी एक कवि है और लोगों की दृष्टि में शीलादित्य से बेहतर कवि।

शीलादित्य एक कम्पनी में एरिया मैनेजर था। कम्पनी दिवालिया हो गई और बंद हो गई। शीलादित्य की नौकरी भी चली गई। उसकी नौकरी चले जाने के बाद वह कविता लिखकर, चित्रकारी करके दिन गुजारने लगा। अचानक से निकम्मे हो गए पति के साथ प्रणामिका रहना नहीं चाहती थी। किरायेदार हेमंत अक्सर शीलादित्य के निकम्मेपन पर व्यंग कसता है । हेमंत की इस आदत के बारे में जब शीलादित्य आलोचना करता तो प्रणामिका उलटे उसकी आलोचना करने लगती और हेमंत का गुणगान करती। हेमंत कितने अच्छे-से कपड़े पहनता है, हेमंत कैसे बिना आवाज किये गाड़ी स्टार्ट करता है, हेमंत कितने अच्छे-से गाड़ी चलाता है आदि-आदि। शीलादित्य ने जब पत्नी के पास नई साड़ी, परफ्यूम, सेंडल आदि देखे तो पहले तो उसने सोचा कि मैं दे नहीं पाता इसलिए पत्नी बचत के रुपयों से लाई होगी। पर बाद में हेमंत के बार-बार सीटी बजाने, प्रणामिका के कहीं सजधज कर निकलते वक्त शीलादित्य के अचानक घर पहुँच जाने पर उदासी से काले पड़ गए प्रणामिका के मुख को देखकर उसे पत्नी पर संदेह हो जाता है। फिर एक दिन शीलादित्य पत्नी को हेमंत के साथ संभोग

करते हुए पकड़ लेता है। पर उसे हेमंत और प्रणामिका के चेहरे पर डर और संकोच का कोई भाव नहीं दीखता। हेमंत शीलादित्य से कहता है-

> खुवाब नोवारा यदि संसार करिछिलि किय? बेहुदा, थुइ। पागलर लगत जानो मानुह बास करिब पारे?
>
> (भट्टाचार्य 2011:31)

(भावार्थ: खिला नहीं सकते तो संसार क्यों बसाया था। बेहूदा,थू। पागल के साथ भला कोई रह सकता है।)

उस दिन के बाद प्रणामिका शीलादित्य के साथ एक पल भी रहना गवारा नहीं करती। यहाँ तक कि वह शीलादित्य के घर में घुसने तक से इनकार कर देती है। शीलादित्य के लिए व्यक्ति की स्वतंत्रता बहुत मायने रखती है। इसी कारण प्रणामिका के किसी के भी साथ चले जाने को वह प्रणामिका की स्वतंत्रता के अंतर्गत मानता है। इस कारण वह खुद प्रणामिका का सारा सामान लाकर देता है और प्रणामिका एक सप्ताह तक हेमंत के साथ उसी किराये के मकान में रहने के बाद कलकत्ते की ही किसी दूसरी जगह चली जाती है।

शीलादित्य को जब उसका पूर्व बॉस इस घटना के बाद संवेदना प्रकट करने के लिए बुलाता है, तब शीलादित्य खुद ही कहता है-

> यिहेतु कारो स्वाधीनतात हस्तक्षेप करात मोर अधिकार नाइ, सेइ कारणेइ बास्तवक आनन्देरे स्वीकार करि लैछो। यि करिछो बा घटिछे दुयोटार स्वइच्छातेइ हैछे।
>
> (भट्टाचार्य 2011:33)

(भावार्थ: चूँकि किसी की स्वाधीनता में हस्तक्षेप करने का मुझे अधिकार नहीं है, इसीलिए वास्तविकता को खुशी-खुशी स्वीकार कर लिया है । जो किया या जो घटा है दोनों की इच्छा से ही घटा है ।)

शीलादित्य और प्रणामिका को एक बेटा भी हुआ था। पर उसकी मृत्यु हो गई थी। उसकी मृत्यु के एक सप्ताह बाद ही हेमंत और प्रणामिका के बीच रिश्ता आकार लेने लगा था। प्रणामिका को बेटे की मृत्यु के बाद दु:ख हुआ पर वह इस बात से संतुष्ट भी थी कि उसके बेटे को शीलादित्य की तरह निकम्मा बनकर जीना नहीं पड़ेगा, भूखे नहीं रहना पड़ेगा -

गतिके मोर लॅराटि (प्रणामिकार मते) ढुकोवा भालेइ हैछे, कारण मइ येनेकै रङ, नदी बा पानीर ढौ, मॅहर जाक, स्कुटारर मिछिल बा मारुतिर मिछिल देखि स्तब्ध है चाइ चाइ भोक पलुवाओ सि बेचेरा मोर दरे सिमान साहसी नहॅबओ पारे।

(भट्टाचार्य 2011:23)

{भावार्थ: इसलिए मेरे लड़के (प्रणामिका के अनुसार) का मरना अच्छा ही हुआ, क्योंकि मैं जिस तरह रंग, नदी या पानी की लहरों, भेंसों के झुंड, स्कूटर की भीड़ या मारुति की भीड़ स्तब्ध होकर देखते हुए भूख मिटाता हूँ वह बेचारा मेरी तरह साहसी नहीं भी हो सकता है।}

नायक की उदासीनता :

शीलादित्य इतना ज्यादा निस्संग और इस हद तक बेपरवाह हो गया है कि उसे किसी बात से न दु:ख होता है न सुख। वह विद्रोह भी नहीं करता। मन में विद्रोह या विरोध की बात चलती भी है तो भी वह उसे कार्य-रूप में परिणत नहीं करता है। इस तरह पत्नी के धोखा देकर चले जाने पर उसके पूर्व सहकर्मी उसको दिलासा देने आते हैं। वह उनके साथ हँसी-मजाक करता है, नाश्ता-पानी खिलाता है और उनको विदा करता है। उसे पत्नी के जाने का कोई दु:ख नहीं है। वह इसे पत्नी की स्वतंत्रता का विषय मानता है।

जब एक दिन उसका एक मित्र उसे मिलता है, मित्र उसे कहता है कि वह होता तो हेमंत को छुरी भोंककर मार डालता। तब शीलादित्य जो कहता है, वह उसके जीवन-संघर्ष से हमेशा जूझते रहने की मनोवृत्ति का परिचायक बनता है-

मइ ताक स्पष्ट भाषात ब्यंग करि जनाइ दिलो ये यार जीवन लै युँजार साहस नाइ तेओँलोकेहे आनक छुरी मारि हत्या करिबलै याय।

(भट्टाचार्य 2011:34)

(भावार्थ: मैंने उसे स्पष्ट तौर पर व्यंग करके बता दिया कि जिनमें जीवन को लेकर जूझने का साहस नहीं है वे लोग ही दूसरों को छुरी भोंककर हत्या करना चाहते हैं।)

बहुत सालों बाद एक दिन प्रणामिका एक छोटे लड़के के साथ बाजार में दीखती है। लड़के को प्रणामिका के साथ देकर शीलादित्य को न जाने क्यों ममता आ जाती है वह लड़के को दो संतरे देता है। बच्चा उससे पूछता है कि वह क्यों उसे संतरे दे रहा है। माँ कहती है कि वह बच्चों को उठाकर ले जाने वाला बदमाश

आदमी है। प्रणामिका बच्चे के हाथ से संतरे फेंक देती है और बच्चे को घसीटते हुए ले जाती है। इस दृश्य को देखकर न तो शीलादित्य को बुरा लगता है न उसे दु:ख ही होता है। वह कहता है-

> मइ अलपो हताश नहॅलो, बास्तव एनेकुवाइ बाबे एनेदरेइ घटिछे। इयात एको आचरित हॅबलगीया नाइ।
>
> (भट्टाचार्य 2011:35)

(भावार्थ: मैं थोड़ा भी हताश नहीं हुआ, वास्तव ऐसा ही है इसलिए इस तरह घटित हुआ। इसमें अचरज में पड़ने की कोई बात नहीं है।)

घरेलू हिंसा :

यह उपन्यास स्त्री पर होने वाली घरेलू हिंसा पर भी सवाल उठाता है। शीलादित्य की माँ इसलिए घर छोड़कर एक गूँगे ड्रावर के साथ पंजाब भाग गई क्योंकि पति उसे मारता-पीटता था, दाओ लेकर काटने को उद्यत होता था, खाने की थाली पत्नी की देह पर दे मारता था। उसने जीवन में कोई सुख नहीं पाया और अंत में उसे यह रास्ता अपनाना पड़ा। पिता के अत्याचार से तंग आकर अपनी माँ के घर छोड़कर चले जाने के संबंध में जो बातें शीलादित्य कहता है उनसे भी उसके पिता के माँ के साथ किये दुर्व्यवहार और माँ के घर छोड़कर जाने की विवशता स्पष्ट होती है। शीलादित्य कहता है-

> देउतार अत्याचार आरु उत्पीड़नत थाकिब नोवारि मोर अज्ञाते एदिन निशा कोनोबा एजन अचिन मानुहर लगत गुचि गैछे। एतिया जीयाइ आछे ने नाइ कोनोवे नाजाने। मुखर छबिखनो पाहरि गॅलो। ओचर-चुबुरीयाइ कय, अभावर ताड़नात आरु देउतार अशोभनीय अश्लील गालि-गालाजे शेषत माक तेनेकुवा हॅबलै बाध्य करिले।
>
> (भट्टाचार्य 2011:36)

(भावार्थ: पिता के अत्याचार और उत्पीड़न से विवश होकर मेरे अज्ञात में ही एक रात किसी एक अनजान व्यक्ति के साथ चली गई। अब जीवित है या नहीं कोई नहीं जानता। चेहरा भी भूल गया हूँ। अड़ोसी-पड़ोसी कहते हैं- अभाव के दबाव में और पिता के अश्लील गालियों ने अंत में माँ को वैसा करने के लिए मजबूर किया ।)

व्यापारी वर्ग की मुनाफाखोरी :

आलोच्च उपन्यास में व्यापारी-वर्ग के लालच का भी वर्णन है। व्यापारी-वर्ग अपने

मुनाफे के अलावा कुछ नहीं देखता। अंग्रेज व्यापारियों की इस मनोवृत्ति को भारतीय व्यापारी-वर्ग ने भी विरासत के तौर पर ग्रहण किया। अंग्रेजों ने जिस प्रकार पराधीन भारत के गरीबों का खाना-पीना, पहनना-ओढ़ना मुश्किल कर दिया था, उसी प्रकार अब भारतीय व्यापारी स्वतंत्र भारत के गरीबों की वही दशा कर रहे हैं। शीलादित्य कैफ़े में बैठा रहता है। कैफ़े में बहुत से अपरिचित चेहरे दीखते हैं। परिचित चेहरे गायब हैं। साथ ही उसने कॉलेज स्ट्रीट पर आंदोलन करती भीड़ भी देखी थी। कैफ़े में बैठे रहते वक्त ही उसको एक पर्चा मिलता है जिसमें कागज के दाम की अस्वाभाविक वृद्धि की प्रतिक्रिया में दिन भर के लिए पुस्तक प्रकाशन प्रतिष्ठानों के बंद रखने की सूचना होती है। उस पर्चे में ही लिखा होता है -

> छपाइ हओक बा लेखार कागज यियेइ नहओक बिभिन्न प्रदेशर कागजर मिल मालिकर निज इच्छात दाम बढ़ाइ थका हैछे।
>
> (भट्टाचार्य 2011:38)

(भावार्थ: छापने वाला हो या लिखने वाला कागज हो विभिन्न प्रदेशों के कागज मिल मालिकों की इच्छा-अनुसार ही दाम बढ़ाए जा रहे हैं।)

मूल्य-वृद्धि की समस्या :

मूल्य-वृद्धि की समस्या दशकों पुरानी है। हमारे बाप-दादा के जमाने से ही मूल्य-वृद्धि की समस्या आम लोगों को परेशान करती आ रही है। आज भी जिस तरह चीजों के दाम बढ़ रहे हैं लगता है गरीब लोगों को बहुत सी चीजें, जो वे अब तक इस्तेमाल करते आ रहे थे, उनका इस्तेमाल करना बंद करना पड़ेगा। भूपेंद्रनारायण भट्टाचार्य जी ने इस उपन्यास में 80 के दशक की मूल्य-वृद्धि की समस्या पर खेद प्रकट किया है। वे सर्कस के पोस्टर में जोकरों और बौनों को हँसते हुए देख कर सोचते हैं कि ये लोग हमेशा कैसे हँसते रह सकते हैं। इसी अवसर पर वे मूल्य-वृद्धि की समस्या को इस बात से जोड़कर पेश करते हैं -

> बोधहय, सिहँत एइ देशर मानुहेइ नहय। नहॅलेनो एके बजारर परा एके दरर बस्तु किनि खाइ हाँहे केनेकै?
>
> (भट्टाचार्य 2011:40)

(भावार्थ: लगता है, वे लोग इस देश के वासी हैं ही नहीं। वरना एक ही बाजार से एक ही कीमत पर चीजें खरीदते हुए खाकर हँसते कैसे हैं?)

घूसखोरी की समस्या :

घूसखोरी की समस्या को भी यह उपन्यास प्रतिफलित करता है। नौकरी देने के लिए घूस लेने के कारण ही सरकारी नौकरी पाने योग्य प्रार्थी के लिए भी नौकरी पाना दुष्कर हो गया है। योग्यता नहीं देखते, पैसा चाहिए। बहुत-से युवा घूस के रुपये जुटाने के लिए जमीन-जायदाद बेच देते हैं इस उम्मीद में कि नौकरी करके घूस के रुपये से ही फिर से जमीन-जायदाद खरीद लेंगे। सरकारी नौकरी में यह गारंटी है कि सरकार तो किसी भी दल की हो, रहेगी ही। जब सरकार हमेशा के लिए है तो आर्थिक सिक्यूरिटी हमेशा रहेगी। इसी उम्मीद में युवा घूस के रुपये जुटाने के लिए क्या कुछ नहीं करते। शीलादित्य को रास्ते में एक नेता का वोट माँगते हुए एक पोस्टर दीखता है। वह जब उसे पहचान जाता है तो गुस्से के मारे कान गरम हो जाते हैं। वह कहता है -

> एइ पॅष्टारत हातयोर करि थका मानुहजनेइतो एदिनाखन एटा केराणी चाकरिर बाबे दह हेजार टका मोर परा खुजिछिल।
>
> (भट्टाचार्य 2011:44)

(भावार्थ: इस पोस्टर में हाथ जोड़कर रहने वाले व्यक्ति ने ही तो एक दिन एक क्लर्क की नौकरी के लिए दस हजार रुपये मुझसे माँगे थे।)

शीलादित्य पोस्टर के उस व्यक्ति के गाल पर जोर से लात मार देता है और पोस्टर को देखता है। यह घूसखोर के साथ किसी भुक्तभोगी व्यक्ति द्वारा किया जा सकने वाला सम्भावित आचरण है।

क्या देश-सेवा के लिए राजनीति जरूरी है?

ऊपर उल्लिखित पोस्टर पर लिखा है-

> आपोनार देशखन सर्बाङ्गसुंदर करि तुलिबलै मोक भोट दियक।
>
> (भट्टाचार्य 2011:44)

(भावार्थ: आपके देश को सर्वांगसुंदर बनाने के लिए मुझे वोट दीजिए।)

शीलादित्य कहता है -

> भोट नोखोजाकै बा मंत्री नोहोवाकै कि देश सर्बाङ्गसुंदर करिब नोवारि?
>
> (भट्टाचार्य 2011:45)

(भावार्थ: वोट न माँगकर या मंत्री न बनकर क्या देश को सर्वांगसुंदर नहीं बनाया जा सकता?)

इस सवाल पर विचार करना बहुत आवश्यक है। क्या सच में पद न प्राप्त करके, सत्ता न प्राप्त करके केवल एक आम नागरिक की तरह हम देश के लिए कुछ नहीं कर सकते? क्या राजनीति में जाने वाला व्यक्ति सत्ता प्राप्त करने के बाद देश को सर्वांगसुंदर बनाने के अपने वादे को निभाता है? क्या देश की कद्र करने वाले सभी व्यक्तियों को राजनीति में आने की आवश्यकता है? मन में सच्ची चाह हो तो कोई भी व्यक्ति देश के विकास में अपना योगदान दे सकता है।

जीने की प्रेरणा देता उपन्यास :

प्रस्तुत उपन्यास जीवन जीने की प्रेरणा देता है, बुरी से बुरी परिस्थिति में भी आत्महत्या का पथ न चुनने का बहुत ही प्रभावशाली परामर्श देता है। लोग जिंदगी की मुश्किलों से तंग आकर आत्महत्या का पथ चुन लेते हैं। इससे उस व्यक्ति की जान चली जाती है। इससे उसका क्या फायदा होता है? जीवन से प्यारी और जरूरी कुछ भी नहीं है दुनिया में। देश के लिए जान कुर्बान करना बड़े गर्व की बात है। पर आत्महत्या करके बिना किसी बृहत्तर उद्देश्य को सामने रखे प्राण त्याग देना किसी भी दृष्टि से औचित्यपूर्ण नहीं है। शीलादित्य कहता है -

> आचलते आत्महत्यार कोनो अर्थ नाइ। यिहेतु स्वाभाविक मृत्यु सकलोरे कारणेइ, तातकै जीयाइ थाकि किनो हय चाइ योवा भाल।
>
> (भट्टाचार्य 2011:49)

(भावार्थ: वास्तव में आत्महत्या का कोई अर्थ नहीं है । चूँकि स्वाभाविक मृत्यु सभी के लिए है, इसीलिए जिंदा रहकर क्या होता है देख लेना ही अच्छा है।)

उपन्यास का अंत :

आलोच्य उपन्यास का अंत आशा के साथ हुआ है। शीलादित्य के मन में आशा का संचार होता है। इसे उपन्यासकार ने बड़े ही कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है। शीलादित्य को अपने घर के सामने के अनार पेड़ के अनार, जब से उसका रिश्ता टूटता है, काले दीखते थे। पर उपन्यास के अंत में उसे वे अनार लाल दीखते हैं । यह उसके मन में जीवन के लिए सकारात्मक दृष्टिकोण और उसके मन की आशा का प्रतिफलन है -

> पकि पकि फाटि परा रसाल सेंदूरीया डालिमबोर मइ इमानदिने कॅला कॅला देखिछिलो। आजि किंतु सेइबोर टिकटिकिया रङा है थका येन अनुभव हॅल।
>
> (भट्टाचार्य 2011:51)

(भावार्थ: पक-पक कर फट पड़े रसीले सिंदूरी अनारों को मैंने इतने दिन काले रंग में देखा था। पर आज वे सब गाढ़े लाल रंगवाले अनुभूत हुए।)

यह उपन्यास कुछेक ज्वलंत प्रश्न छोड़ जाता है कि क्या पुरुष कमाऊ न हो तो उसके साथ कोई स्त्री नहीं रह सकती? क्या महिला आर्थिक रूप से हमेशा पुरुष पर आश्रित रहेगी? पुरुष कमाता हो तभी महिला उसको प्रेम और इज्जत देगी।

निष्कर्ष:

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि चेतना प्रवाह शैली में लिखा गया 'मरूद्यान' एक प्रमुख और उत्कृष्ट कोटि का असमीया उपन्यास है। आकार में छोटा होने पर भी यह बहुत ही प्रभावशाली है। यह उपन्यास एक बेरोजगार युवक की सांसारिक व्यर्थता की कहानी कहता है। साथ ही कलाकार-सुलभ बेपरवाही भी नायक में परिलक्षित होती है। नायक आधुनिक विचारधारा से प्रेरित युवक है जो अपने साथी के समान अधिकार को मानता है चाहे उस अधिकार का उपभोग करते हुए उसका साथी उसके साथ घोर अन्याय ही क्यों न कर दे। उपन्यास का नायक हर परिस्थिति में सकारात्मक सोच रखता है और यही सोच उसे आशावादी बनाता है। इस उपन्यास में सामाजिक समस्याओं, रिश्वतखोरी, भ्रष्टाचार आदि को भी चित्रित करने का प्रयास लक्षित होता है। इस उपन्यास का घटना-क्रम और कार्य-व्यापार बड़े ही रोचक हैं। पाठक को अपने साथ बाँधे रखने में यह उपन्यास पूर्णत: समर्थ है।

यह उपन्यास जीवन की मरुभूमि के बीच आशा और सकारात्मक दृष्टिकोण का मरूद्यान है।

ग्रंथ-सूची :

भट्टाचार्य, भूपेंद्रनारायण. मरूद्यान आरु अन्यान्य. गुवाहाटी: एन.एल. पाब्लिकेशन्स, 2011.

संपर्क-सूत्र:
शोधार्थी, हिंदी विभाग
गौहाटी विश्वविद्यालय
ई-मेइल: 666mandal@gmail.com

शोध-चिंतन पत्रिका: सहयोगी विद्वानों द्वारा पुनरीक्षित ई शोध पत्रिका
अंक:3; जुलाई-दिसंबर, 2021; पृष्ठ संख्या: 78-86

समीर ताँती की कविताओं में चित्रित आर्थिक चेतना

✍ रूबी मणि दास

शोध-सार:

अर्थ आज के युग का मूल तत्व है, अर्थ को हम वर्तमान समाज की रीढ़ की हड्डी भी कह सकते हैं। आज समाज और मनुष्य के विकास का मूल तत्व अर्थ ही है। अर्थ के अभाव में मनुष्य एवं समाज का विकास सम्भव नहीं। एक जागरूक साहित्यकार अपने समाज तथा आस-पास में घटित घटनाओं के प्रति हमेशा सचेत होता है। युगीन आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक ,धार्मिक विषमताएँ कवि या साहित्यकार के हृदय को आंदोलित न करें, ऐसा सम्भव नहीं। इस शोध-पत्र में समीर ताँती की कविताओं में चित्रित आर्थिक चेतना को प्रस्तुत किया गया है। समीर ताँती जो असमीया साहित्य के समकालीन कवि हैं, इन्होंने अर्थ के अभाव में समाज में फैली अनेक प्रकार की विषमताओं, लाचारी, गरीबी आदि को भली-भाँति महसूस किया है, जिनका प्रतिफलन हम उनके द्वारा लिखित कविताओं में देख सकते हैं।

बीज शब्द: *समीर ताँती, असमीया कविता, आर्थिक चेतना, चाय-बागान, चाय मजदूर।*

प्रस्तावना:

समीर ताँती एक साधारण कवि नहीं हैं। बीसवीं सदी के अंतिम दशक में हमारे समाज एवं राजनीति से जुड़ी नकारात्मक दिशा को जिस ओजपूर्ण शब्द और रूपक के माध्यम से समीर ताँती ने अपनी कविताओं में वाणीबद्ध किया है, वैसे अन्य किसी भी कवि ने नहीं किया है। इसलिए असमीया साहित्य में समीर ताँती को समकालीन कविता का एक महत्वपूर्ण

कण्ठस्वर कहा जाता है। वे दलितों और पीड़ितों के कवि हैं।

प्रत्येक देश, समाज या क्षेत्र की अपनी-अपनी सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ होती हैं। समीर ताँती ने अपनी कविताओं में असम प्रांत की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि परिप्रेक्ष्य को लिया है। वे अनुसूचित चाय जनजाति के हैं। उन्होंने बचपन से ही चाय जन- जाति के लोगों के दुख-दर्द, गरीबी-लाचारी, शोषण आदि को देखा है और महसूस किया है। उन्होंने आर्थिक वैषम्य के शिकार चाय जनजाति के लोगों के कारुनिक चित्र अपनी कविताओं में उभारे हैं। साथ ही इसी परिप्रेक्ष्य में वर्ग-विषमता की विभीषिका और चाय बागानों में घुटता हुआ जन-जीवन भी मूर्त रूप में उनके साहित्य में चित्रित हुए हैं।

प्रस्तुत लेख में अपनायी गयी अध्ययन की पद्धति विश्लेषणात्मक है। अध्ययन में असमीया भाषा के ग्रंथों का सहारा लिया गया है। संदर्भ उल्लेख तथा संदर्भ ग्रन्थ-सूची के प्रस्तुतीकरण में MLA (Modern Language Association) पद्धति के प्रचलित दिशा-निर्देशों का पालन किया गया है। प्रस्तुत शोध-पत्र में असमीया भाषा की कुछ कविताओं की पक्तियाँ दी गयी हैं। असमीया भाषा में 'स' उच्चारण वाले दो वर्ण हैं- 'च' और 'छ'। असमीया भाषा में 'स' वर्ण के लिए कोमल 'ह' का उच्चारण होता है। असमीया 'स', 'च', 'छ'-इन तीनों वर्णों के लिए देवनागरी लिप्यंतरण में क्रमश: 'स', 'च', 'छ' रखे गये हैं। हिंदी भाषा के 'य' वर्ण के लिए असमीया भाषा में दो वर्ण हैं- एक का उच्चारण 'य' ही है और दूसरे का उच्चारण 'ज' होता है। असमीया 'य' के लिए हिंदी में भी 'य' रखा गया है, पर असमीया के 'य' के 'ज' वाले उच्चारण के लिए देवनागरी लिप्यतंरण में 'य़' रखा गया है।

विश्लेषण:

समीर ताँती की रचनाओं की पटभूमि है असम। यही उनका जन्मस्थान तथा आवासभूमि भी है। उनकी कविताओं के विशाल परिप्रेक्ष्य में है समग्र पृथ्वी। समीर ताँती अन्य आधुनिक कवियों की भाँति संशय और संदेह के वशीभूत होकर निराशा का आश्रय नहीं लेते। वे कहते हैं-

विभीषिकाओं के अंत होने पर एक दिन शांति की स्थापना होगी। (डेका 2013:267)

आशावाद उनकी कविता का मूल स्वर है। लेकिन उनकी कविताओं में हमें विभिन्न समय की विविध मानसिक अवस्थाओं का रूप भी देखने को मिलते हैं। 19 वीं सदी के मध्य भाग से 20 वीं सदी के मध्य भाग तक पूर्वी भारत के आदिवासी मुख्य प्रदेशों से जनजातीय चाय श्रमिकों को कई चरणों में चाय बागानों में मजदूरी करने के लिए लाया गया था। चाय-बागानों में उनका जीवन-यापन बहुत ही दयनीय था। चाय मजदूरों का हर दिन हाजिरी लिया जाता था। बीमार होने पर भी उनको हमेशा मजदूरी करने आना पड़ता था। उन्हें किसी भी प्रकार की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं होती थी। चाय मजदूरों को बहुत ही कम बेतन दिया जाता था जिससे उनके परिवार का भी पालन पोषण नहीं हो पाता था। चाय बागानों में स्वास्थ्य एवं शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं थी। बागानों के मालिक, बड़े अफसरों द्वारा मजदूरों पर कई तरह के अत्याचार किए जाते थे। समीर ताँती के माता-पिता चाय बागान में काम करने वाले मजदूर थे, इसलिए उन्होंने बचपन से ही चाय मजदूरों पर होनेवाले अत्याचार, शोषण तथा मजदूरों की दयनीय आर्थिक स्थिति को देखा था। अर्थ के अभाव में या कहें आर्थिक मजबूरी के कारण ही चाय मजदूर शोषण के शिकार बनते थे।

समीर ताँती की कविताओं में व्यक्त आर्थिक चेतना:

वर्तमान युग में अर्थ एक ऐसा तत्व है जिससे मानव जीवन की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। व्यक्ति के व्यक्तित्व-विकास में हो या परिवार के पालन-पोषण में, अर्थ विशिष्ट भूमिका निभाता है। अर्थ के अभाव में व्यक्ति, जीवन में आनेवाली हर समस्या का सामना नहीं कर पाता। अकाल तथा अभावों से जूझकर अंतत: मनुष्य हार मान लेता है और अपने भाग्य पर ही दोषारोपण करता है। समीर ताँती ने अपनी कविताओं में आर्थिक संघर्ष से जुड़ी विभिन्न समस्याओं जैसे– अशिक्षा, गरीबी, शोषण आदि का चित्रण किया है।

अशिक्षा:

किसी भी देश या समाज में आर्थिक शोषण का मुख्य कारण है- अशिक्षा और गरीबी। शिक्षा के माध्यम से ही व्यक्ति आर्थिक

दृष्टि से स्वावलम्बी होकर अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो सकता है और अपना शोषण होने से रोक सकता है। शिक्षा एक परिवार के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। समीर ताँती ने आर्थिक वैषम्य के शिकार सर्वहारा वर्ग के कारुणिक चित्र अपनी कविताओं में उभारे हैं। चाय मजदूर शिक्षा के अभाव में अपने ऊपर होनेवाले शोषण, अत्याचारों का विरोध करने में असमर्थ थे। मजदूर अच्छे या बुरे की पहचान नहीं कर पाते थे। मालिक वर्ग जो कहते थे उसी को सच मानकर दिन-रात मेहनत करते थे। अशिक्षित होने के कारण ही उनके मन में यह धारणा होती है कि गुलामी करना, पशु की भाँति जीवन व्यतीत करना ही उनका भाग्य है।

समीर ताँती ने 'चालाम हजुर, हामि गिरमिटियार बेटा' कविता में गिरिमिटिया मजदूरों की दयनीय स्थिति के बारे में कहा है-

चालाम हजुर
हामि गिरमिटियार बेटा
आपोनार लाइनत थाको
येनेके थाके कुकुर आरु गाहरि
आपोनार बांग्लार परा दूरैत।

(ताँती 2014:63)

(भावार्थ: आशय यह है कि एक मजदूर अपने मालिक से कहता है कि चालाम मालिक मैं गिरमिटिया का बेटा हूँ। मैं आपके बंगले वाली कतार में ही रहता हूँ। जैसे कुत्ते और सुअर रहते हैं- वैसे ही हम भी रहते हैं आपके बंगले से दूरी पर।)

फिर 'ईश्वर वंदना' नामक कविता में भूख के कारण बनी स्थिति के बारे में कवि ने कहा है-

प्रभु
आमार भोकर बाबे दाय-दोष नधरिबा
आमि उपजिलो आमार भोकत
निमखर दरे चाहत गलिबलै।

(ताँती 2014:21)

(भावार्थ: हे प्रभु, भूख के लिए हमसे अगर कोई भूल-चूक हो जाए तो हमें क्षमा करना। हमारा जन्म ही भूख में हुआ है। हमें गरीबी में ही हमेशा गुजारा करना पड़ेगा। जिस प्रकार चाय में नमक घूल-मिल जाता है, उसी प्रकार हम भी सभी परिस्थितिओं के साथ घूल जाते हैं।)

'सहज आछिला बाबे' नामक कविता में कवि ने गिरिमिटिया मजदूरों को धोखे से असम लाये जाने की बात का खुलासा करते हुए इस प्रकार कहा है-

हे निठुर श्याम
फाँकि दिये आनिलि आसाम
भोक संध्या ईश्वर। मौन पोहर
पढ़ि याउँ हाड़बोर शोकर मेजत
क'त राति क'त नारी। क'त पुतिला हुमुनियाह।

(ताँती 2014:12)

औपनिवेशिक शासक-गोष्ठी के द्वारा सहज-सरल लोगों को मजदूरी करने के लिए जिस प्रकार असम में लाया गया था उसी का वर्णन कवि ने यहाँ मर्मस्पर्शी रूप में किया है। लाचार मजदूरों की भूख, गरीबी और आहें इन पंक्तियों में प्रतिबिम्बित हो उठी हैं।

इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि चाय -बागानों में मजदूरों की अवस्था कैसी होती है। किस प्रकार मजदूर जानवरों जैसा जीवन-यापन करते हैं। अशिक्षा के कारण वे लोग अपने ऊपर हुए सभी अत्याचारों के लिए भाग्य को ही दोष देते हैं।

शोषण:

कवि समीर ताँती ने 'चाह बागिचा तोमार रोटी' नामक कविता में कहा है कि चाय मजदूर केवल अपने पेट की भूख मिटाने के लिए दिन-रात कारखानों में काम करते हैं। कारखानों_में काम करते हुए वे अपने प्राणों की आहुति देते हैं। शोषक-वर्ग के वाणिज्यिक लाभ के लिए चाय मजदूर अपना सब कुछ त्याग देते हैं-

कलघरर धुँवात घुखर एकोटा दिन
तोमार कामिहाड़त कलघरर उखाह
चाह बागिचा तोमार रोटी
तुमि चाह बागिचार माटि।

(ताँती 2014:33)

'एखिला पात सेउजीया' नामक कविता में भी समीर ताँती ने चाय मजदूरों पर हुए शोषण का मार्मिक चित्रण किया है –

कलघर कलघर
सिँचरित हाड़-मङह
बाकचे बाकचे।

(ताँती 2014:11)

(भावार्थ: मजदूर चाय बागानों से चाय पत्ती तोड़कर लाते हैं, कारखानों में उसे अनेक प्रयोगों के माध्यम से पीने लायक बनाया जाता

है और बक्सों में भरा जाता है। कवि कहते हैं कि उन बक्सों में चाय-पत्तियों के स्थान पर लाखों मजदूरों के हाड़-माँस यानी उनका श्रम भरा हुआ है।)

'आसन सलनि ह'ले' नामक कविता में चाय मजदूरों पर होने वाले लगातार शोषण के बारे में कवि कहते हैं –

आसन सलनि ह'ले सलनि नहय समय
एकेइ थाके दिन पेटत पानीगामोछा बांधि
एकेइ थाके तार ज्वाला
सलनि नहय भोक येने आछिल आगत
तेनेदरेइ बाढ़े सदागरी शोषण।

(ताँती 2009:23)

(भावार्थ: कवि कहते हैं कि मजदूरों का समय, उनकी हालत कभी बदलती नहीं। अतीत, वर्तमान और भविष्य एक जैसे ही हैं। बागानों में नए बड़े-बड़े अफसर आते हैं लेकिन मजदूरों की दशा एक जैसी ही रहती है। उन पर शोषण दिन व दिन बढ़ता ही जाता है।)

'चाह बागिचा मोर चाह बागिचा' नामक कविता में मजदूरों की क्षुधा और शोकग्रस्तता के बारे में कवि का कहना है-

तोमार क्षुधा थाकक तोमार स'ते
निद्रा आरु यौनतार आशे-पाशे
तुमि थाका संध्या शोकर निर्जनतात।

(ताँती 2014:46)

(भावार्थ: चाय मजदूरों पर हुए शोषण की मर्मस्पर्शी गाथा कवि ने यहाँ प्रस्तुत किया है। कवि कहते हैं कि तुम्हारी भूख-क्षुधा को समझने वाला कोई नहीं है। तुम्हारी क्षुधा जीवन के अंत तक तुम्हारे साथ ही रहेगी। मजदूर सुबह काम करने जाते हैं और शाम को लौटकर खाली पेट केवल अपने भाग्य पर रोते हैं।)

गरीबी:

चाय-बागानों में बच्चों के पढ़ने के लिए शिक्षा की व्यवस्था होती तो मजदूरों की हालत थोड़ी- बहुत सुधरती। शिक्षा की उचित व्यवस्था न होने के कारण ही एक परिवार के सभी जन मजदूर-श्रमिक ही बनते हैं। माता-पिता के बाद बच्चें भी मजदूर ही बनते हैं। फलस्वरूप मजदूरों की आर्थिक स्थिति एक जैसी ही बनी रहती है। धन के अभाव में मजदूर अपने बच्चों को पढ़ाने में असमर्थ हैं। मालिक वर्ग के द्वारा मजदूरों को पढ़ने-लिखने, अपनी हालत को सुधारने का मौका ही नहीं दिया जाता है।

फलस्वरूप मालिक वर्ग दिन व दिन अमीर बनते जाते हैं और श्रमिक वर्ग गरीब।

'उरे निशा चाह बागिचार माजेरे' नामक कविता में कवि ने चाय जन-जाति की दरिद्रता का चित्रण किया है। चाय-बागानों में काम करके जीवन-यापन करनेवाले इन लोगों का जीवन किस प्रकार गरीबी, बीमारी से जर्जर है, इसका प्रतिफलन इस कविता में हुआ है-

गभीर आवेदन
आरु तेजर नीरवता
बिबर्ण बाट आरु बिधवार हुमुनियाह।

(ताँती 2014:15)

(भावार्थ: इन पक्तियों में कवि के कहने का आशय है कि चारों तरफ केवल दुख और बेबसी है, एक तरफ विधवा का दुख है तो दूसरी तरफ बीमार संतान को अपनी आँखों के सामने तड़पते हुए देखने का दुख। अपने दुखों को दूर करने के लिए इनके पास कोई साधन नहीं है। इन लोगों के सामने सिर्फ उदासी से भरा हुआ एक पथ है।)

'चाहपानी ने चकुपानी' नामक कविता में कवि समीर ताँती चाय मजदूर की गरीबी को व्यंजित करते हुए कहते हैं -

चाहपानी ने चकुपानी
हयतो मोर कलिजार तेज
पियला भराय बाकि दिँलो
धुँआइ धुँआइ नाचि उठा मेज।

(ताँती 2014:14)

(भावार्थ: कवि कहते हैं कि यह चाय है या मजदूरों के आँसू। यह मेरे हृदय का रक्त है। हम प्याले में चाय नहीं बल्कि मजदूरों के रक्त को पीते हैं। कवि के कहने का आशय है कि बागानों में मजदूर दिन भर काम करते हैं फिर भी शाम को घर आकर उन्हें भूखे पेट सोना पड़ता है। मजदूरों को अपनी मेहनत का उचित मूल्य भी प्राप्त नहीं होता। इसलिए कवि कहते हैं कि हम चाय नहीं बल्कि मजदूरों के रक्त को पीते हैं।)

समीर ताँती के काव्य-संग्रह 'कदम फुलार राति' की 'मइ एक चाह मजदूर' नामक कविता में कहा गया है-

मइ एक चाह मजदूर
सेउजीयार आंधारत जन्म।

(ताँती 2014:26)

(भावार्थ: यहाँ कवि के कहने का आशय है कि मैं एक चाय-बागान में काम करने वाला मजदूर हूँ, जिसका जन्म चाय-पत्तों के हरे अंधकार में हुआ है। कवि कहना चाहते हैं कि चाय-बागान में जन्म लेने वालों का जीवन अंधकारमय होता है।)

निष्कर्ष:

यह कहा जा सकता है कि समीर ताँती ने अपनी कविताओं में अर्थ और मनुष्य के पारस्परिक सम्बंध को समझा है तथा आर्थिक समस्याओं से जुड़े विभिन्न पहलुओं को अपनी कविताओं में चित्रित किया है। चाय-बागानों में रहनेवाले लोगों का जीवन, इस एक ही विषय-वस्तु को लेकर कवि समीर ताँती ने बहुत सी कविताओं की रचना की है। यह कहा जाता है कि कवि का भाषा पर पूर्ण अधिकार होना आवश्यक होता है ताकि कवि के हृदय स्थित भावों को व्यक्त करने में भाषा पूर्णत: सक्षम हो। समीर ताँती ने अपने भाव-विचारों को अत्यंत सहज-सरल भाषा के माध्यम से व्यक्त किया है। उन्होंने आधुनिकतावादी भाषा-रीति के माध्यम से अपनी कविताओं में संग्रामी जीवन की छवि को प्रस्तुत किया है। देश के प्रति, देश की जनता के प्रति अपने प्रेम को अभिव्यक्त करने के लिए कवि ने बलिष्ठ एवं सक्षम भाषा का प्रयोग किया है।

कवि के हृदय में यह विश्वास है कि वर्ग-भेद की समस्या एक दिन समाप्त होगी। पूँजीपति मालिकों द्वारा चाय मजदूरों पर हुए अत्याचार, शोषण का अंत होगा। कवि के मन में यह आशा है कि चाय जन-जाति के लोगों में एक दिन नयी समाज व्यवस्था की स्थापना होगी। श्रमिक, मजदूरों की शक्ति के सामने एक दिन पूँजीपति मालिक-वर्ग को पराजय स्वीकार करना पड़ेगा।

ग्रंथ-सूची:

डेका, हरेकृष्ण. आधुनिक कबिता. प्रथम. गुवाहाटी: पेप्यीरस, 2013.

ताँती, समीर. शुनिछाने खेई मात. प्रथम. पानबजार: एन.एल.पब्लिकेशन, 2009.

--. सेउजीया उत्सव. दूसरा. पानबजार: लर्यास बूक स्तल, 2012.

--. कदम फुलार राति. प्रथम. पानबजार: बनलता, 2014.

संपर्क-सूत्र:
शोधार्थी, हिंदी विभाग, गौहाटी विश्वविद्यालय
ई-मेइल: rubimoni345@gmail.com

शोध-चिंतन पत्रिका: सहयोगी विद्वानों द्वारा पुनरीक्षित ई शोध पत्रिका
अंक:3; जुलाई-दिसंबर, 2021; पृष्ठ संख्या : 87-95

सुशीला टाकभौरे की कविताओं में स्त्री-मुक्ति का स्वर : एक विश्लेषणात्मक अनुशीलन

✍ **नीतामणि बरदलै**

शोध-सार:

सुशीला टाकभौरे हिंदी साहित्य की सफल कवयित्री हैं। एक दलित परिवार में जन्मी टाकभौरे ने जाति पर आधारित भारतीय समाज-व्यवस्था की कुरीतियों को देखा ही नहीं झेला भी है। कवयित्री ने पुरुष प्रधान समाज में नारी की दयनीय स्थिति का चित्रण करते हुए उसकीमुक्ति के स्वर से मुखरित कविताएँ लिखी हैं। उनकी कविता विद्रोह, संघर्ष एवं अधिकार का दस्तावेज है।

बीज शब्द: *सुशीला टाकभौरे की कविता, समाज-व्यवस्था, स्त्री अधिकार, स्त्री मुक्ति।*

प्रस्तावना:

हर युग में स्त्री का संघर्ष विद्यमान है, चाहे वह सामाजिक जीवन में हो या पारिवारिक जीवन में। स्त्री हमेशा एक निर्दिष्ट मानदंड की राही है। मनुवादी पुरुषसत्ता वाला समाज उसे लगातार उस मानदंड से बाहर निकलने का अधिकार ही प्रदान नहीं करता, बल्कि बार-बार उसे दबाने की कोशिश करता है। परिवर्तित युग के साथ-साथ लोगों के मनोभावों और रहन-सहन में अनेक परिवर्तन हुए परंतु स्त्री के प्रति उपेक्षित दृष्टिकोण आज भी पितृसत्तात्मक समाज में दिखाई देता है। 21 वीं सदी की नारी समाज के विभिन्न क्षेत्रों में स्वाधीन है, परंतु पारिवारिक क्षेत्र में आज भी नारी पुरुष द्वारा परिचालित है। अपने पिता, पति द्वारा नारी सदा ही उपेक्षित रहती है, उसका दृष्टिकोण हमेशा पुरुष से हेय माना जाता है। नारी हमेशा ही इस जीवन के दलदल से उबरने की कोशिश करती है और स्वयं अपने अस्तित्व पर प्रश्न करती है।

स्त्री के पास बोध और विचार शक्ति होने के बावजूद वह बोध-शून्य और विचार-शून्य बनी रह जाती है। परंपरागत सामाजिक व्यवस्था ने उसे सिर्फ 'स्त्री' के रूप में रूपांतरित किया है। स्त्री का अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व के साथ समाज तथा परिवार में जीना ही स्त्री-मुक्ति का आयाम है, स्त्री-व्यथा से मुक्ति की राह है।

विश्लेषण:

सुशीला टाकभौरे दलित कवयित्रियों में अन्यतम हैं। समाज-चेतनशील कवयित्री सुशीला टाकभौरे के साहित्य में स्त्री-उद्धार के स्वर उजागर होते दिखाई देते हैं। आधुनिक दलित कविता जगत में सुशीला टाकभौरे अमूल्य निधि हैं, वे पहली हिन्दी-भाषी दलित कवयित्री हैं। दलित समाज तथा दलित नारी-जीवन संबंधी अनेक वास्तविक चित्रण टाकभौरे जी की कविताओं में झलकते हैं। भारतीय समाज में स्त्री होना तो अभिशाप स्वरूप है, लेकिन दलित स्त्री होना दोहरा अभिशाप ही है। भंगी जाति में जन्म लेने वाली टाकभौरे जी अनेक संघर्षों को झेलती हुई अध्यापिका जैसे सम्मानीय और गौरवपूर्ण पद पर कार्यरत हैं। जातिवादी भारतीय समाज में निम्न जाति में जन्म लेना अभिशाप स्वरूप है, परंतु निम्न जाति में एक स्त्री के रूप में जन्म लेना अत्यंत ही संघर्ष पूर्ण है। उसे अपनी जाति और अपना स्त्रीत्व दोनों के लिए संघर्षों का सामना करना पड़ता है। इस दोहरे अभिशाप तथा संघर्ष से उबरने की वाणी व प्रेरणा उनकी अधिकांश कविताओं में मिलती है। दलित साहित्यकार टाकभौरे जी द्वारा रचित प्रमुख कविता-संकलन हैं- 'स्वाति बूंद और खारे मोती', 'यह तुम भी जानो', 'तुमने उसे कब पहचाना', 'हमारे हिस्से का सूरज' आदि। उनका काव्य-संग्रह 'तुमने उसे कब पहचाना' वस्तुतः नारी-अस्मिता पर लिखी गई कविताओं का संग्रह है। कवयित्री ने इसमें अत्यंत सूक्ष्म रूप में समाज के विभिन्न उपादानों को लेकर पुरुष सत्तात्मक समाज में नारी की दयनीय स्थिति को दर्शाया है। उनकी कविताओं में यथार्थता की गूंज झलकती है । कवयित्री ने 'गाली' नामक कविता में नारी और पुरुष के अर्थ को हृदय विदारक रूप में दिखाया है। सच में भारतीय समाज में नारी इतनी अधिक पराधीन है कि गाली के लिए भी स्त्री बोधक शब्द का चयन किया जाता है। कवयित्री कुत्ता

और कुतिया शब्द से नारी और पुरुष की भिन्नता को दिखाती हैं। समाज में लोग कुत्ते को वफादार मानते हैं परन्तु कुतिया को वफादार नहीं माना जाता, बल्कि उसे एक नकारात्मक अर्थ में बोला जाता है। कुतिया शब्द सुनकर ही अनुभव होता है कि यह एक गालीसूचक शब्द है। इसलिए वे अपनी कविता के माध्यम से प्रश्न करती हैं-

कुतिया शब्द सुनकर ही लगता है
यह एक गाली है,
क्या इसलिए कि वह
स्त्री वर्ग में आती है ?
उसके चरित्र को उसकी वफा को
अनेक बांटों में टोला जाता है !

(टाकभौरे 1994 : 29)

हमारे भारतीय समाज में समर्पण तथा विद्रोह सभी में नारी चरित्र तथा स्वाभिमान पर कटाक्ष किए जाते हैं, नारी को सदैव दोष दिया जाता है। पुरुषों की गलतियों पर हमेशा मनु नामक चादर ओढ़ दी जाती है-

पुरुष प्रधान समाज में
चाहे समर्पण हो
या विद्रोह,
दुर्गुण का दोष नारी पर है।
पुरुष के दुर्गुणों पर हमेशा
मनु- नाम की
चादर डाली जाती है।

(टाकभौरे 1994: 29)

मनुवादी समाज में एक स्त्री जब भी कुछ करने की, कुछ लिखने की या कहने की चाहत रखती है, उसमें वह स्वतंत्र नहीं रह पाती। उसे बार-बार यह अनुभव होता है कि जैसे कोई उसकी पहरेदारी कर रहा है। उसके मन में एक डर हमेशा विराजमान रहता है। उसे अनुभव होता है कि जैसे वह एक मजदूर है और उसको परखने के लिए कोई पहरेदार हो। वह एहसास करती है कि वह जैसे किसी की खरीदी हुई संपत्ति हो और उसपर उसके चौकीदार की निगाह हो। कवयित्री ने 'स्त्री' नामक कविता में अत्यंत हृदयस्पर्शी स्वर में कहा है-

पहरेदारी करता हुआ
कोई
सिर पर सवार हो
पहरेदार,
जैसे एक मजदूर औरत के लिए
ठेकेदार
या खरीदी संपत्ति के लिए

चौकीदार।

(टाकभौरे 1994 : 30)

पुरुषवादी समाज ने असल में नारी को कभी भी नहीं समझा। इसलिए नारी अपने जीवन के प्रत्येक क्षण में अपनी अस्मिता की खोज करती है, खुद को पहचानने की कोशिश करती है। इसी विचारधारा को लेकर कवयित्री 'स्त्री' नामक कविता में लिखती हैं, परंपरावादी संस्कार हमेशा स्त्री को बांधता है, जीवन के हर मोड़ पर उसे अपनी बोली और कार्य में सावधानी बरतनी पड़ती है-

वह सोचती है-
लिखते समय कलम को झुका ले
बोलते समय बात को संभाल ले
और समझने के लिए
सबके दृष्टिकोण से देखे ,
क्योंकि वह एक स्त्री है !
लेकिन कब तक?

(टाकभौरे 1994: 30)

हमारे समाज में बेटों का जन्म आशीर्वाद स्वरूप माना जाता है और बेटियों का जन्म अभिशाप स्वरूप। आज भी पितृ सत्तात्मक समाज में बेटों को ही कुलधारी माना जाता है, वंश का रक्षक समझा जाता है। बेटियों को पराया धन समझकर उनके प्रति उपेक्षित तथा अवहेलित दृष्टिकोण रखा जाता है। एक माँ पुत्र-रत्न प्राप्त करने के लिए आस बनाए रखती है-

परिंदों की तरह
पंख फड़फड़ाते हैं
स्वप्न
एक बेटा और एक बेटा
हर बार आस अधूरी ही रहती है।

(टाकभौरे 1995: 64)

इतिहास से ही यह विदित है कि नारी को हमेशा दंड स्वीकार करना पड़ता है। भगवान राम के कारण सीता भी अपना दंड स्वीकार कर मिट्टी में विलीन हुई। लेकिन समाज के परिवर्तन के साथ साथ नारी मन में भी प्रगति आई। आज नारी भोली-भाली जानकी नहीं जो अपना दोष बिना प्रतिवाद किए मान लेगी। अब जानकी सब कुछ जान गयी है, समझ गयी है। जानकी की तरह आज की स्त्री धरती में न समाकर आकाश में जाना चाहती है। उच्च उड़ान भरना चाहती है, बिजली जैसे चमक कर वह संदेश देना चाहती है कि नारी को भी पुरुष की तरह जीने का अधिकार

है, स्वतन्त्रता का हक है। सुशीला टाकभौरे 'जानकी जान गयी है' कविता में इसी बात का उल्लेख करती हैं-

आज जानकी सब जान गयी है,
अब वह धरती में नहीं
आकाश में जाना चाहती है,
बिजली-सी चमक कर
संदेश देना चाहती है-
"पुरुष प्रधान समाज में
स्त्री भी
समानता की अधिकारी है।

(टाकभौरे 1995 : 66)

निरंतर आवेग तथा संघर्ष में जलते रहना ही नारी का जीवन है। पुरुष प्रधान समाज में नारी अबला है, शक्तिहीन है। परंतु अगर उसकी आंतरिक शक्ति जग जाये तो वह ज्वालामुखी स्वरूप बन जाती है। नारी को बस इसी शक्तिशाली रूप को पहचानना है। नारी की शक्ति जाग जाए तो वह सिंहनी की तरह गर्जना कर सकती है, नागिन की तरह प्रतिशोध ले सकती है। उस शक्तिपुंज को हमेशा शमा की तरह जीना पड़ता है, जलना पड़ता है। जलना ही जैसे नारी का जीवन है। कवयित्री नारी समाज के प्रति आह्वान करती हैं कि अगर जलते रहना ही है तो हमें शमा की तरह नहीं मशाल की तरह जलना चाहिए, जिससे कि समाज को रोशनी मिले, उजास मिले-

जलना ही है, तो इस तरह जले,
संसार को उजास दे,
वह 'शमा' नहीं 'मशाल' है।
शक्ति में बेमिसाल है।

(टाकभौरे 1995 : 69)

समाज ने नारी को कब पहचाना है, नारी के सुख-दु:ख, अस्तित्व को कब जाना और समझ पाया है? वास्तव में संसार में हर स्त्री को स्त्री होने का दु:ख सहना पड़ता है। नारी रूप में जीवन जीने की परीक्षा वह जीवन में हर क्षण देती है। सुशीला टाकभौरे ने अपनी कविता 'तुमने उसे कब पहचाना' में नारी जीवन की दु:खद परिस्थिति को उजागर किया है-

चन्दन वन की शाख
मटियारे चुल्हें में जलती रही,
नारी होने की परीक्षा

वह
हर पल देती रही।

(टाकभौरे 1995 : 61)

स्त्री के बिना घर में रौनक ही नहीं होती। स्त्री ही एक घर तथा परिवार की स्वाभिमान होती है। परंतु उस रौनक को पुरुषवादी समाज में महत्व ही नहीं दिया जाता। घर के हीरे रूपी स्त्री को पुरुष कोयला जैसे जलाते हैं, उसकी जगमगाहट रंगीन जीवन को बेरंग कर देती हैं-

मगर घर का हीरा
कोयला जैसा
जलाया जाता है।

(टाकभौरे 1995: 61)

समाज में नारी को हमेशा उपेक्षा और आक्रोश-भरी निगाहों से देखा जाता है। उपेक्षा और आक्रोश से नारी को हमेशा ही रौंधा जाता है-

उपेक्षा की ठंडक और
आक्रोश के तेज़ाब से
नारी व्यक्तित्व को
हमेशा रौंधा जाता है !!

(टाकभौरे 1995 : 61)

सुशीला टाकभौरे की कविताओं में केवल नारी की दु:ख-गाथा को ही दर्शाया नहीं गया है, बल्कि उन सब में उस दर्द-भरी ज़िंदगी से उबरने की भी सलाह विद्यमान है, स्त्री-उद्धार का स्वर उनके काव्य में स्पष्ट झलकता है। वे नारी को अबला रूप में नहीं देखना चाहती हैं और उनके अनुसार न ही नारी को रोटी-रसोई तक सीमाबद्ध होना चाहिए। प्रत्येक नारी को अपने अधिकार ज्ञात होना चाहिए। वे नारी को जागृत करना चाहती हैं ताकि परंपरा से चली आई नारी की दासता को सम्मान और समानाधिकार मिलें। सुशीला टाकभौरे की दृष्टि में वही नारी धन्य है जो समाज की सम्पूर्ण रीति-नीतियों से ऊपर उठकर, उन्हें नये रूप में अपनाकर देश तथा समाज के लिए अपना जीवन न्योछावर करे-

धन्य वही नारी जो
इन सबसे ऊपर उठकर,
नए नियम-विधान बनाकर
देश-समाज को वरती है।

(टाकभौरे 1995 : 70)

स्त्री का जीवन स्वतंत्र है। स्त्री स्वतंत्र रूप से जीना चाहती है। परंतु परंम्परा के

कारण ही स्त्री शिकंजे में बंधी हुई है। स्त्री के सभी अंग स्वतंत्र हैं, सिर्फ उसके पाँव बंधे हुए हैं, मनुवादी पुरुष-सत्तात्मक समाज ने उसके पांवों को ऐसी जंजीरों से बांध दिया है कि सब कुछ मुक्त होते हुये भी वह मुक्त नही हो पाती। स्त्री अपने मायके तथा ससुराल दोनों में ही दरवाजे के पीछे से संसार को देखती है। दरवाजे से बाहर निकलकर संसार को देखने के लिए मायके और ससुराल ने कभी उसके पांवों की जंजीर को खोला ही नहीं। कवयित्री के अनुसार-

आँख, कान, विचार स्वतंत्र हैं
बंधन है सिर्फ पावों में।
कुल की लाज
सीमाओं का दायरा
घर की चौखट तक,
मायका हो या ससुराल
दरवाजे के पीछे
पर्दे की ओट से
वह देखती है संसार।

(टाकभौरे 1995 : 77)

सुशीला टाकभौरे के अनुसार औरत की मजबूरी सिर्फ परंपरागत रीतियों को लेकर है। 'मेरी स्थिति' नामक कविता में उन्होंने अत्यंत ही सुंदर ढंग से एक स्त्री को स्त्री के रूप में लेकर स्त्री-अस्तित्व के प्रश्न पर प्रकाश डाला है। वे कहती हैं कि समाज को स्त्री की सही स्थिति को परखना चाहिए। स्त्री का मूल्यांकन सिर्फ सधवा अथवा विधवा, मायके और ससुराल की कुल-इज्जत तक ही सीमित नहीं करना चाहिए, बल्कि उनसे ऊपर एक मानव शरीर और मन के धरातल पर उसे परखना चाहिए-

मुझे यूं टुकड़ों में न बांटिये
मैं एक औरत हूँ
सधवा-विधवा से परे
दो-परिवारों की इज्जत के अलावा
मैं मैं हूँ।

(टाकभौरे 1995 : 78)

समाज की हर स्थिति में स्त्री को यूं ही इस्तेमाल किया जाता है। कभी कला के नाम पर, तो कभी विज्ञापन के नाम पर। चित्रकला, वास्तु-शिल्प, अजंता-एलोरा में नारी के जो वासनात्मक रूप दिखाये गये हैं उन्हें देखकर पुरुष समाज वासना के रंग में घुल जाता है। सुशीला टाकभौरे अपनी कविताओं के माध्यम

से संदेश देती हैं कि नारी की स्थिति को ऐसे न दिखाये। नारी सृष्टि है- माँ, पुत्री, पत्नी, बहन के रूप में नारी-जीवन धन्य है। नारी-जीवन की महिमा पर गर्व करती हुई सुशीला टाकभौरे 'युग चेतना' कविता में लिखते हैं-

मैं संशित हूँ, पर
गर्वित भी,
मैं गर्भशीला
भविष्य के एक सत्य की
माँ बनना चाहती हूँ।
मैं वंध्या नहीं
न ही पत्नी हूँ
नपुंसक काल की।
मैं सृजनशीला।

(टाकभौरे 1995:57)

इस प्रकार स्त्री प्रकृति है। नारी वह शक्ति है जिसके माध्यम से एक समाज अपने भविष्य को देख पाता है। नारी-जीवन अपने-आप में एक गर्व का विषय है क्योंकि नारी सृजनशीलता है।

निष्कर्ष:

इस प्रकार हम देखते हैं कि सुशीला टाकभौरे की कविताएं स्त्री-मुक्ति-चेतना से संपृक्त हैं। उनकी अधिकांश कविताओं में स्त्री-उद्धार के स्वर परिलक्षित होते हैं। स्त्रियों की समानाधिकार-हीनता से जैसे वे अत्यंत दु:खी हैं। पराधीन तथा गुलामी रूपी इस जीवन-यात्रा से वे स्त्रियों को मुक्ति दिलाना चाहती हैं। उनकी कविताएँ अपने-आप में प्रेरणादायक हैं, जिन्हें पढ़कर हृदय में एक आत्मविश्वास तथा साहस जाग जाता है। उनकी ज्यादातर कविताओं में अंबेडकर, ज्योतिबा फुले आदि महान विभूतियों के गुणगान मिलते हैं। उनके आदर्शों को वे समस्त दलित समाज तथा नारी समाज को ज्ञात कराना चाहती हैं। उनकी कविताएं मानवीय धरातल से संपृक्त हैं। उनकी कविताओं से जातिवादी तथा पुरुषवादी भावधाराओं से ऊपर उठकर मनुष्य को मानव के रूप में देखने की प्रेरणा मिलती है।

ग्रंथ-सूची:

आधार-ग्रंथ:

टाकभौरे, सुशीला.स्वाति बूंद और खारे मोती. नागपुर:शरद प्रकाशन, 1993.

--.यह तुम भी जानो. नागपुर:शरद प्रकाशन, 1994.

--.तुमने उसे कब पहचाना. नागपुर:शरद प्रकाशन, 1995.

--.हमारे हिस्से का सूरज. नागपुर:शरद प्रकाशन, 2005.

सहायक ग्रंथ-सूची:

कस्तवार, रेखा.स्त्री चिंतन की चुनौतियाँ. दिल्ली:राजकमल प्रकाशन, 2016.

लाल, चमन.दलित साहित्य : एक मूल्यांकन. दिल्ली: राजपाल एंड सन्ज, 2014.

संपर्क-सूत्र:
सहायक अध्यापक
डिगबोई महिला महाविद्यालय

शोध-चिंतन पत्रिका: सहयोगी विद्वानों द्वारा पुनरीक्षित ई शोध पत्रिका
अंक:3; जुलाई-दिसंबर, 2021; पृष्ठ संख्या: 96-102

चंद्रकांता की कहानियों में कश्मीरी जीवन का यथार्थ

✍ संगीता

शोध सार:

कश्मीर ही नहीं, देश- दुनिया की हर उस मानवीय त्रासदी को चंद्रकांता अपनी कहानियों में जगह देती है, जिसमें एक संवेदनशील रचनाकार का मन आहत और उद्वेलित होता है। वे उस भ्रष्ट व्यवस्था और मनुष्य विरोधी तंत्र को कटघरे में खड़ा करतीं हैं ,जिसने तेजी से बदलते समाज में चारों तरफ के संघर्ष से घिरे मनुष्य की आंतरिक अनुभूतियों को कहीं गहरे दफन कर दिया है। व्यक्ति और व्यवस्था की मुठभेड़ में वे पूरी प्रतिबद्धता के साथ प्रत्येक विषम परिस्थिति एवं प्रवृत्ति की समीक्षा करती है, तत्पश्चात उन तथ्यों का अन्वेषण करती है, जिससे मनुष्य की अंतर आत्मा को मरने से बचाया जा सके और इस प्रकार एक बेहतर कल के लिए मनुष्यों के स्वप्नों, संवेदनाओं और स्मृतियों को सिरज लेने की चिंता चन्द्रकांता की कहानियों का प्रस्थान बिंदु बन जाती है।

बीज शब्द: *चंद्रकांता, कश्मीरी समाज, राजनीति।*

प्रस्तावना:

कश्मीर के श्रीनगर में जन्मी चंद्रकांता कश्मीर केंद्रित अपने विपुल लेखन के लिए हिंदी जगत में खासी लोकप्रिय है। अपनी कहानियों में उन्होंने देश विभाजन के तत्काल बाद कश्मीर संकट से उपजे हालात से लेकर 'जेहाद' के नाम पर जारी आतंकवाद से झुलसते कश्मीर की आबोहवा और आवाम के दुख दर्द का चित्र उकेरा है, जहां वे यथास्थिति का चित्रण भर करके नहीं रुक जाती अपितु प्यार, ईनाम और इंसानियत से लबरेज पात्रों का सृजन कर कट्टरता एवं हिंसा के विरुद्ध आवाज उठाती है।

विश्लेषण:

"प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्तियों का संचित प्रतिबिम्ब होता

है"(शुक्ल 2015:13) आचार्य शुक्ल जी की निम्न पंक्तियाँ तब और भी प्रासंगिक हो जाती है जब हम चंद्रकांता के कथा-साहित्य से रूबरू होते हैं। चंद्रकांता हिन्दी के उन विरल कहानीकारों में से है जिन्होंने राजनीतिक आन्दोलनों व भाषण से दूर रहते हुए विमर्श के सीमित दायरों से आगे बढ़कर सामाजिकता के प्रसार को छूते हुए व्यापक मानव मूल्यों और सामाजिक सरोकारों वाली कहानियों की रचना करके अपनी एक अलग पहचान स्थापित की है। सन् 1967 में 'कल्पना' पत्रिका में प्रकाशित पहली कहानी 'खून के रेशे' से विगत 50 वर्षों से उनकी कहानी यात्रा इस बात की गवाह है कि चंद्रकांता ने अपने समसामयिक परिस्थितियों को देखकर सामाजिक सरोकार से जुड़े उन सभी महत्त्वपूर्ण प्रश्नों को समाज के सामने प्रस्तुत किया है जिसे साहित्यिक समाज ने छुआ तक नहीं था और इसके माध्यम से समाज के यथार्थ को दर्शाने में कोई कसर नहीं छोड़ी है।

'धरती का स्वर्ग' कहे जाने वाले कश्मीर में जन्मी चंद्रकांता की कहानियों का केन्द्र कश्मीर है व उनकी ख्याति का कारण भी कश्मीर है। "'वादी, वितस्ता और संगरमाल', 'पहाड़ों से पठार तक', 'बाजार से गुजरते हुए', 'समय के कठघरे में' जैसे कहानी संग्रहों की रचना करके उन्होंने कश्मीरी समाज, कश्मीरी संस्कृति और उसकी सांस्कृतिक विरासत को न केवल एक पहचान दी है अपितु आतंकवाद, अलगाववाद, साम्प्रदायिकता और धार्मिक उन्माद से ग्रसित खून के छीटों से भीगे हुए कश्मीर के यथार्थ को बहुत सरलता, सहजता और प्रमाणिकता के साथ दर्शाया है। चंद्रकांता की कहानियों में हमें भारतीय स्वतंत्र्योत्तर पश्चात् तथा देश विभाजन की त्रासदी के दंश से बनी कश्मीर की स्थिति व कश्मीरी समाज में साम्प्रदायिक उन्माद से लेकर आतंकवाद अलगाववाद, उपेक्षा, शोषण की पीड़ा को सहते कश्मीरी समाज का यथार्थ चित्र अंकन किया गया है तथा वह केवल इस यथार्थ तक सीमित नहीं रहती है वे सामाजिक सौहार्द के लिए उच्च मानवीय मूल्यों और इंसानियत की चेतना से ओतप्रोत होकर कट्टरता, हिंसा और उन्माद के विरुद्ध अपनी आवाज़ बुलन्द करती है।

चंद्रकांता अपनी 'शायद संवाद' कहानी के माध्यम से कश्मीरी हिन्दुओं के विस्थापन की पीड़ा व निष्कासन के दंश से अपने हालातों और कश्मीरी हिन्दुओं के अपनी जड़ों से कटने की पीड़ा के बीच कश्मीरी वादियों में शांति बहाली के लिए सम्भावनाएँ तलाशती है। पलायन की पीड़ा की जीते हुए 'नीलकंठ' बारह वर्षों के पश्चात् कश्मीर लौटते हैं और इसके माध्यम से चंद्रकांता यह सत्य हमारे सामने रखती है कि कश्मीर में हिन्दू हो अथवा मुसलमान दोनों ही धर्म के लोग आतंकवाद की समस्या से पीड़ित व शोषित है।

> पहले हिन्दुओं को घर बाहर कर दिया फिर मुसलमानों को भी कहा बक्शा? आधी रात घरों में घुसकर खाने-पीने की फरमाइशे तो करते ही थे, घर की बहू-बेटियों की बेहुरमती करने से भी गुरेज नहीं किया। जिसने समझाने की कोशिश की उसे गोली से भूनकर खामोश कर दिया।
>
> (चंद्रकांता 2009:63)

सन् 1989-90 के बीच कश्मीर घाटी से निष्कासित कश्मीरी हिन्दुओं को जम्मू दिल्ली के रिफ्यूजी कैम्पों में नारकीय जीवन जीना पड़ा। चंद्रकांता इस प्रश्न को अपनी कहानियों में प्रमुखता के साथ उठाती है। जो अपने बसे बसाए घरों को छोड़ने को मजबूर हो गए और आज भी जो अपनी खुली हुई जड़ों को स्थापित करने के लिए अपने ही देश में शरणार्थी बने हुए विस्थापन के दंश को झेल रहे हैं। अपने ही राज्य में गैर मुस्लिम होने के कारण यानी हिन्दुस्तानी एंजेड होने के कारण अपने ही राज्य से निष्कासित कर दिए गए तो दूसरी तरफ सरकारों ने तुष्टीकरण और धर्म निरपेक्षता की दिखावटी राजनीति के कारण कश्मीरी हिन्दुओं की समस्याओं और उनके स्थायी समाधानों को हमेशा हाशिए पर रखा गया जिसने इनके भीतर अपने ही देश में शरणार्थी होने की भावना को लगातार प्रबल किया। चंद्रकांता ने मानवीय त्रासदी की इस विभत्सय घटना को प्रमाणिकता के साथ अपनी कहानियों के माध्यम से कश्मीर के इस यथार्थ को प्रस्तुत किया है। अलगाववाद, आतंकवाद, उन्माद, हिंसा की तमाम घटनाओं के बावजूद कश्मीरी समाज की एकता अखण्डता और सौहार्द की चेतना को उकेरना भी चंद्रकांता नहीं भूलती है।

> हाँ समझ गया उन्हें कश्मीर वादी चाहिए कश्मीरियों से उन्हें कोई मुहब्बत नहीं।

भाई की दुगर्त देखकर उसका भरम टूट गया। चिल्लयकलान में कुपवाड़ा की पहाड़ियों में गन देकर भेज दिया 'लड़ो ओर मरो'।

(चंद्रकांता 2009:63)

कहानी 'पोशनूल की वापसी' धार्मिक भेद-भाव से अलग इन्सानियत के संबंधों के होने का सुखद पल देती है। इस कहानी में महदा चाचा अपनी जान पर खेलकर अपने मालिक बबलाल और उसके परिवार को कबाइलियों के जुल्मों से बचाता है तो वही बबलाल महदा के बुरे वक्त में उसके बच्चों की परवरिश का खर्च उठाकर अपने फर्ज का निर्वहन करता है। चंद्रकांता कश्मीरी संवेदना को जो कि मानवता, इंसानियत, शांति, सौहार्द की प्रतीक है उसके सभी पहलुओं से हमें अवगत कराती है।

चन्द्रकाता अपनी कहानियों के माध्यम से कश्मीरी समाज के साहस, संघर्ष और हौसले की आवाज़ को बुलन्द करती है। 'आवाज़' दहशतगर्दों के द्वारा प्रताड़ित कश्मीरी लड़की 'विनी' के साहस और संघर्षों की कहानी है। कश्मीरी लड़कियाँ किस तरह से दहशतगर्दों की हैवानियत का शिकार होती है उस पीड़ा की आवाज़्ा है यह कहानी। कश्मीरवादी इस पीड़ा को कैसे सहती है उसका यथार्थ चित्र चंद्रकांता अपनी कहानियों में बयाँ करती हुई दिखती है। मैथिलीशरण गुप्त की इतिहास प्रसिद्ध पंक्तियाँ "अबला जीवन हाय तेरी यही कहानी आँचल में दूध आँखों में पानी" से चंद्रकांता बिल्कुल असहमत दिखाई देती है। वह नारी को अबला या विवश नहीं मानती है। वह नारी जाति को अपने अधिकारों के प्रति संघर्ष करने की प्रेरणा देती है अपने अस्तित्व अस्मिता के प्रति सचेत करती है। चंद्रकांता ने स्त्रियों के विभिन्न प्रसंगों पर कहानियाँ लिखी है। वह स्त्री के दुखों को मनुष्य मात्र का दुख मानती है और अपने कहानियों में संघर्षशील, साहसी और अपनी अस्मिता अस्तित्व के लिए आवाज़्ा उठाने वाले पात्रों का सृजन भी इसीलिए किया है।

मानवीय अस्मिता एवं न्याय की पक्षधर चंद्रकांता अपनी कहानियों में उस भ्रष्ट व्यवस्था और मनुष्य विरोधी तंत्र को कठघरे में खड़ी करती है जिसने तेज़ी से बदलते समाज में चतुर्दिक संघर्ष से घिरे

> मनुष्य की आंतरिक अनुभूतियों को कही गहरे दफन कर दिया है। व्यक्ति और व्यवस्था की मुठभेड़ में वे पूरी प्रतिबद्धता के साथ प्रत्येक विषम परिस्थितियों की समीक्षा करती है तत्पश्चात् उन तथ्यों का अन्वेषण करती है। जिससे मनुष्य की अन्तरात्मा को मरने से बचाया जा सके और इस प्रकार एक बेहतर कल के लिए मनुष्य के स्वप्नों, संवेदनाओं और स्मृतियों के सिरज लेने की चिन्ता चंद्रकांता की कहानियों का प्रस्थान बिन्दु बन जाती है।
>
> (चंद्रकांता 2020:07)

चंद्रकांता की कहानियाँ हमें कश्मीरी समाज के सरोकारों से जोड़ने का कार्य करती है तथा समसामयिक परिस्थितियों की अनुगूंज हमें चंद्रकांता की कहानियों में देखने को मिल जाती है। चंद्रकांता की दृष्टि यथार्थवादी है उन्होंने अपनी कहानियों में न केवल कश्मीरी इतिहास, परम्परा, सांस्कृतिक विरासत का गहन दृष्टि से विश्लेषण करती है अपितु कश्मीर के लोकजीवन सामान्य जनता में हिन्दू मुस्लिम सौहार्द और विरासत का सूक्ष्मता के साथ चित्रण करते हुए वर्तमान कश्मीरी जीवन साम्प्रदायिक उन्मादों की स्थितियों तथा देश विभाजन के पश्चात् चली आ रही राजनैतिक उथल-पुथल का बड़ा ही मार्मिक और संवेदनात्मक चित्रण करती है तथा सामाजिक विसंगतियों पर तीखे प्रश्न करने से भी हिचकती नहीं है।

'सूरज उगने तक' कहानी कश्मीर की सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक विषमता वैषम्य व मूल्यहीनता से उपजी परिस्थितियों का उचित मूल्यांकन करती हुई दिखाई पड़ती है। कश्मीरी युवाओं के अन्दर आ रहे सार्थक बदलवों के लिए उन्हें तैयार करती हुई दिखाई पड़ती है। जहाँ कश्मीरी युवा मानवीय चेतना और संवेदनात्मक दृष्टि के कारण अपनी नौकरी की परवाह किए बिना एक गरीब मजदूर की जान बचाता है। कश्मीर की भ्रष्ट व्यवस्था और मानवहीनता तंत्र पर चंद्रकांता कटाक्ष करती है। मानवता और व्यवस्था में वह मानवता की विषम परिस्थितियों के लिए भ्रष्टाचारी तंत्र को जिम्मेवार ठहराती है। चंद्रकांता सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक सरोकारों से जुड़े हुए उन सभी प्रश्नों को उठाने का प्रयास करती है जिससे सम्पूर्ण कश्मीरी समाज ग्रसित है। वह कश्मीरी समाज में आए नकारात्मक

माहौल को भी दर्शाती है तथा सकारात्मकता की पक्षधरता भी करती हुई दिखती है।

> चंद्रकांता की कहानियों में मानवीय सरोकारों की मुख्य धुरी परिवार है जिसके ताने-बाने में बनते-बिगड़ते सम्बन्धों एवं समीकरणों का लेखा अपने समय के गुट्ठिल सामाजिक यथार्थ का रेशा-रेशा उजागर करता है और इन्हीं ब्यौरे में जब लेखिका संवेदना के सूत्र पकड़कर मनुष्य के भावजगत का निरीक्षण करती है। तो मन को कचोटता, करुणा व अवसाद भरा संगीत कहानियों में सिग्नेचर ट्यून की तरह सुनाई देती है।(चंद्रकांता 2020:08)

वैश्वीकरण के इस दौर में जहाँ मानव मूल्यों को दरकिनार करके निजी हित को प्राथमिकता दी जाती है। वैसे समय में चंद्रकांता अनुभूतियों व भावों को जागृत करके मनुष्य के होने व उसकी मानवता, इंसानियत, नैतिकता को केन्द्र में रखती है और अपनी कहानियों को सामाजिक सरोकारों से जोड़े बिना नहीं रह पाती है।

निष्कर्ष:

चंद्रकांता की कहानियाँ सामाजिक सरोकारों, मानवीय मूल्यों और नैतिकता से परिपूर्ण है। चंद्रकांता ने अपनी कहानियों की विषयवस्तु के माध्यम से कश्मीर से निष्कासित कश्मीरी हिन्दुओं के विस्थापन के दंश को हमारे समक्ष जितनी प्रमाणिकता के साथ प्रस्तुत किया है व मानव जाति की सबसे बड़ी त्रासदी की पीड़ा के यथार्थ को उकेरा है वह अपने आप में अतुलनीय है। चंद्रकांता ने कश्मीरी हिन्दुओं के साथ-साथ कश्मीरी मुसलमानों व सामान्य जनता के दुख-दर्द को भी हमारे समक्ष रखती है। इसके साथ-साथ कश्मीरी लोक जीवन व उसकी सांस्कृतिक विरासत का भी उचित मूल्यांकन किया है। यह कहना उचित होगा कि चंद्रकांता की कहानियों में हमें कश्मीरी के आँचलिक जीवन और उसकी लोक चेतना का मनोरम यथार्थ भी देखने को मिलता है। चंद्रकांता की कहानियाँ कश्मीरी समाज के यथार्थ को बयाँ तो करती ही है उसके साथ कश्मीरी समाज को एक नई दिशा दृष्टि व व्यापक परिवेश देने का कार्य करती हुई दिखाई देती है।

ग्रंथ-सूची:

शुक्ल,रामचन्द्र. हिन्दी साहित्य का इतिहास. दरियागंज:वाणी प्रकाशन, 2015.

चंद्रकांता.रात में सागर.प्रथम.गाजियाबाद:रेमाधव पब्लिकेशन प्राइवेट लिमिटेड, 2009.

--.प्रतिनिधि कहानियाँ.प्रथम. दरियागंज:राजकमल पेपरबैक्स, 2020.

संपर्क-सूत्र:
शोधार्थी
पीएच.डी., हिन्दी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
मोबाइल नं. 7065206900